जनवरी, 2014
ISSN - 2321-3922

# संभाव्य

## हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

ISSN - 2321-3922

# संभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)
जनवरी, 2014

**संस्थापक सह प्रबन्ध संपादक**
श्री दयानन्द जायसवाल

**संरक्षक**
डॉ. विजय कुमार सिंह

**संपादक**
डॉ. अश्विनी
डॉ. जी. पी. सिंह

**संस्थापक सदस्य**
डॉ. राम किशोर शर्मा
श्री उमाकान्त भारती
श्रीमती छाया पाण्डेय

**स्थायी सदस्य**
श्री अजय कुमार सिंह
श्री धनंजय प्रसाद मण्डल 'अजित'
श्री विनय कुमार
श्री सत्यदेवेश प्रसाद
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

**कार्यालय प्रभारी**
श्री अनूप किशोर

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक।
रचनाओं के लिए रचनाकार उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र भागलपुर।

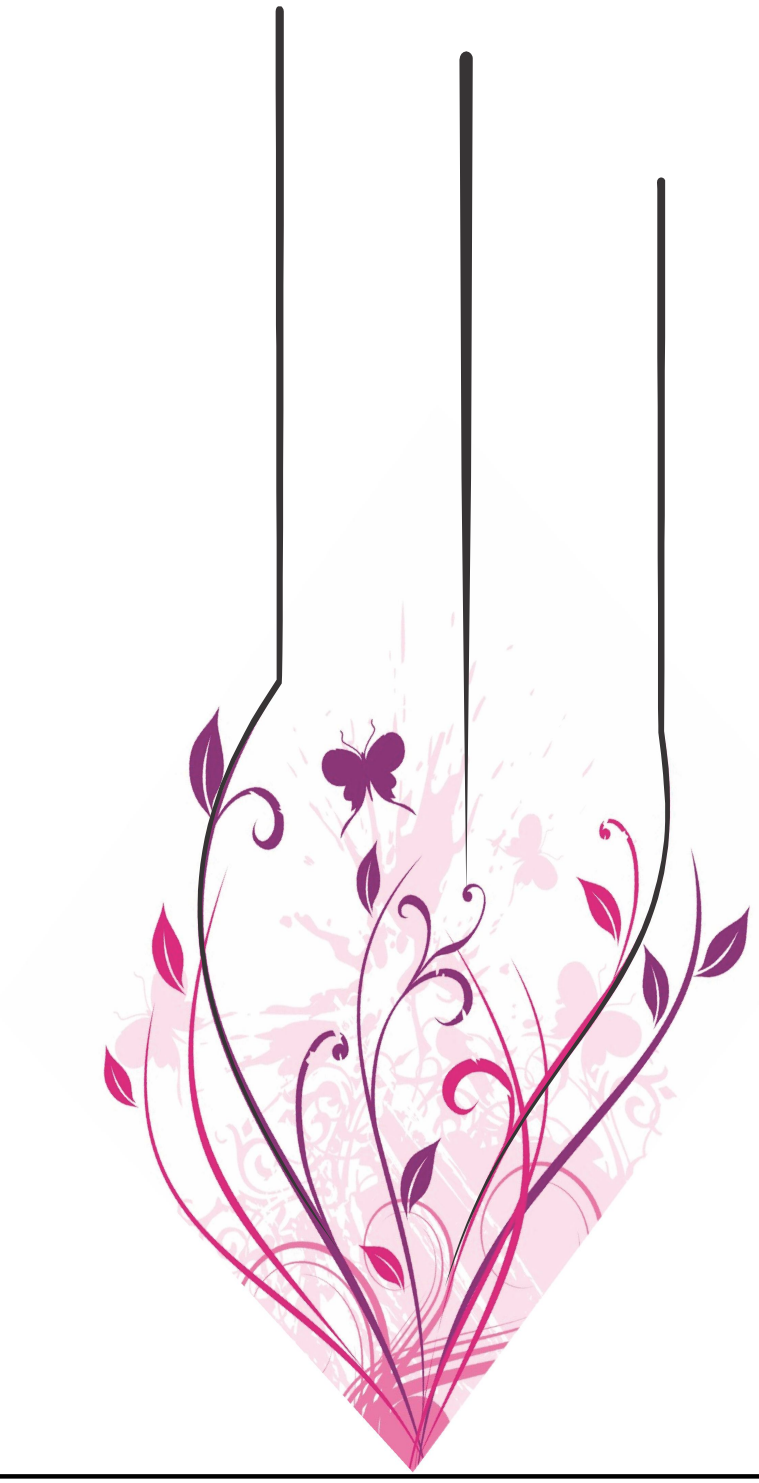

संपर्क : **Sri Dayanand Jayswal**
**Mourya Jubilee Place, Zero Mile, Bhagalpur - 813210 (Bihar)**
**Mob. : 9931240303, 9570838880**
**Website : www.sambhavya.com | e-mail : dnjaysawal@sambhavya.com**

भारतीय चिंतन एवं दर्शन के पुरोधा पुरूष विश्व विश्रुत स्वामी विवेकानंद की 151वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में संभाव्य परिवार का सश्रद्ध नमन !

''विश्व में अधिकांश लोग इसलिए असफल हो जाते हैं क्योंकि समय पर उनमें साहस का संचार नहीं हो पाता ।''

*- स्वामी विवेकानंद*

# संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.com


## आमंत्रण

मित्रो,

संभाव्य अंतरराष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो सम्भवतः विश्व की प्रथम निःशुल्क एवं विज्ञापनरहित पत्रिका है। इस पत्रिका का उद्देश्य विश्व के कण-कण और क्षण-क्षण में आदर्शों और मूल्यों को स्थापित करना है। इस पत्रिका से जुड़ने के लिए न तो कोई सदस्यता शुल्क है और न ही पत्रिका का कोई मूल्य। अनायास ही कहीं से सहयोग राशि मिल जाए तो अच्छी बात होगी।

विदित हो कि वर्तमान समय में विश्वग्राम के 26 देश सहित भारत के 65 शहरों के सहृदय 'संभाव्य' के पाठक हैं।

इस पत्रिका का ई-संस्करण विश्वग्राम के सभी सदस्यों के लिए निःशुल्क सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों और हिंदी के विकास के लिए समर्पित संस्था एवं संस्थानों को प्रेषित किया जाता है।

सामाजिक सरोकार से संबंधित समसामयिक समस्याओं और उसके समाधान पर सार्वभौम एवं सार्वजनीन चिंतन करनेवाले साहित्यकारों से आग्रह है कि अप्रैल 2014 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रचनाएं अपने पत्राचार के पता साथ मेल करें तथा विश्वग्राम-सौंदर्य-संवर्द्धन का सहभागी बनें।


**डॉ. जी. पी. सिंह**

**संपादक, संभाव्य**

gpsingh@sambhavya.com

Mob. : 9431257315

# अनुक्रम


| क्र0 सं0 | | | पृष्ठ सं0 |
|---|---|---|---|
| 1. | संस्थापक की कलम से... | पुरोवाक् | संस्थापक, संभाव्य | 5 |
| 2. | रेशमी शहर का ताना-बाना | वैचारिक लेख | डॉ० शिवशंकर सिंह 'पारिजात' | 6 |
| 3. | वर्षगाँठ | कविता | डॉ० अश्विनी | 8 |
| 4. | माँ | कहानी | डॉ० अमरेन्द्र | 9 |
| 5. | देवी माँ | लघुकथा | उमाकांत भारती | 12 |
| 6. | नताशा की तीन कविताएँ | कविता | नताशा | 13 |
| 7. | स्वातंत्रोत्तर कविता | वैचारिक निबंध | डॉ० सुनील कुमार परीट | 14 |
| 8. | ग़ज़ल | ग़ज़ल | अभिनव अरुण | 16 |
| 9. | समुद्र | कविता | डॉ० रंजना जायसवाल | 16 |
| 10. | नई कहानी के सूत्रधार | व्यक्तित्व एवं कृतित्व | शतदल मंजरी | 17 |
| 11. | बहुत याद आती है गाँव की | कविता | डॉ० जी.पी.सिंह | 19 |
| 12. | स्वच्छ गनन में | कविता | डॉ० अन्नपूर्णा वाजपेयी | 19 |
| 13. | औरत का प्रेत | कहानी | डॉ० आभा पूर्वे | 20 |
| 14. | ग़ज़ल. | ग़ज़ल | शायर अशोक मिजाज़ | 23 |
| 15. | ग़ज़ल | ग़ज़ल | शाकिर ख़ान | 23 |
| 16. | एक अजन्मा | कविता | मोनाज़िर आशिक़ हरग़ानवी | 23 |
| 17. | मधुर स्मृति का मधुरांकन | संस्मरण | रवि कुमार गोंड़ | 24 |
| 18. | क्षितिज | कविता | डॉ० अलका अग्रवाल | 26 |
| 19. | तीन चित्र | कविता | ई० दीप्ति शर्मा | 27 |
| 20. | डॉ० हरिवंशराय बच्चन : काव्य विवेचन | समीक्षा | दयानन्द जायसवाल | 28 |
| 21. | सत्य का आत्म विश्लेषण | कविता | डॉ० शशांक शुक्ल | 33 |
| 22. | क्षणिकाओं के जीवंत पक्ष | समीक्षा | डॉ० ज्वाला प्रसाद कौशिक | 34 |
| 23. | पत्थर की एक और अहिल्या | लघुकथा | डॉ० अचल भारती | 37 |
| 24. | न नींद, न चैन | गीत | राज हीरामन | 38 |
| 25. | ओंकारेश्वर से महाकालेश्वर तक | यात्रा-वृत्तांत | डॉ० अनुज प्रभात | 39 |
| 26. | मानव और प्रकृति का नैसर्गिक समन्वय | चिंतन | शिवनंदन प्रसाद सिंह | 42 |
| 27 | बेघर परिंदे | कविता | सच्चिदानंद इंसान | 43 |
| 28. | शिला का खून पीती थी | समीक्षा | डॉ० बहादुर मिश्र | 44 |
| 29. | सामाजिक वैविध्य-संतुलन | आलेख | दयानंद पंडित | 46 |
| 30. | जिज्ञासा | लघुकथा | डॉ० महेन्द्र मयंक | 48 |
| 31. | उसे भी जीने दो | कविता | संयुक्ता गुप्ता | 49 |
| 32. | वृद्धावस्था | कविता | शेराज़ ख़ान | 49 |
| 33. | लोकवाणी | प्रतिक्रिया | पाठकगण | 50 |

पुरोवाक्

# संस्थापक की कलम से ...

जीवन में प्रत्येक प्राणी जन्म से मृत्यु तक निरंतर गतिशील रहते हैं। अक्सर जीवन यात्रा के इस पथ पर अनेक अवरोध आते हैं, लेकिन ये अवरोध जीवन यात्रा के मार्ग को और दृढ़ बनाते हैं तथा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अभिप्रेरित करते हैं। जीवन कर्म का पथ है, बना रहता है जब तक साँस चलती है। इस संसार में प्रत्येक क्षण कर्म होता रहता है। अर्थात जीवन आगे बढ़ता रहता है। इसीलिए विद्वानों एवं महापुरुषों ने जीवन में प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करने की सलाह दी है। आज कुछ लोग अहिंसा हत्या, अपराध, लूट, मार-पीट जैसे अमानवीय गुणों को अपनाकर मानवता को कलंकित कर रहे हैं। ऐसे लोगों से मानवता शर्मसार होती है। विश्व में आतंकवाद एवं नक्सलवाद अमानवीयता के उदाहरण हैं। अपने निजी या अन्य स्वार्थ के लिए आतंकवादी एवं नक्सलवादी निर्दोष लोगों को मौत के घाट उतारने से भी बाज नहीं आते, लेकिन सच्चा मानव तो वही है जो मानव के काम आये। मानवता बड़ी या छोटी नहीं होती, यह आत्मा और हृदय से प्रेरित होती है।

साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य में मानवीय समाज के सुख-दुख, आशा-निराशा, साहस-भय और उत्थान-पतन का स्पष्ट चित्रण रहता है। साहित्य एक स्वायत्त आत्मा है। उसकी सृष्टि करने वाला भी ठीक से यह नहीं बता सकता है कि उसके रचे साहित्य की गूंज कब और कहाँ तक जायेगी। साहित्य समाज में नैतिक सत्य की चिन्ता है तो यह समाज की दूरगामी वृत्तियों का रक्षक तत्व भी है। एक बात और है, राजनीतिक दृष्टि से विश्व चाहे कितने भी गुटों में क्यों ने बँट गया हो, चाहे उसके मतभेद की खाई कितनी ही गहरी क्यों न हो गई हो, साहित्य के प्रांगण में सब एक है, क्योंकि दुनिया का मानव एक है।

आप जानते हैं कि यह पत्रिका साहित्यिक विरासत की अवहेलना की चिंता, विश्व सहित्य की कल्पना, भाषा साहित्य, संस्कृति, सभ्यता और हमारी अस्तिमता की पहचान के रूप में सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। इसमें विस्तृत विमर्श की स्वाधीन अभिव्यक्ति है, मूल्यों की एक कोशिश है। हिन्दी की संस्कृति का अभिज्ञान है, सृजनात्मक सपने की संस्पन्दना का उल्लेख है एवं यह एक साहित्यिक ज्ञान के क्षितिज की अपरिसीम विस्तृति से आपको जोड़ने का प्रयास है। 'संभाव्य' पत्रिका की जब हमने शुरूआत की तो सोचा नहीं था कि संभाव्य परिवार का यह प्रयास आपसबों के बीच इतना लोकप्रिय हो जायगा। हमें मालूम है कि आप सब 'संभाव्य' के हर अगले अंक का बेसब्री से इन्तजार करते हैं। आपका यह इन्तजार ही हमारे विश्वास और उत्साह को उत्तरोत्तर बढ़ाता है। यही कारण है कि हम भूमण्डलीकरण से भयाक्रांत होकर किसी अंधेरे कोने में दुबककर नहीं बैठ सकते और न ही हम साहस और संकल्प को पराजित मानसिकता की धारा में विसर्जित कर सकते।

आप इन बातों से वाकिफ हैं कि साहित्य का सृजन यंत्रों द्वारा नहीं होता, मनुष्य के मन मस्तिष्क में, मनुष्य की चेतना के क्षितिज और अन्तरिक्ष में, जीवन और जगत में, संयोग में अनुभूति और सोच के गर्भ में, जीवन और दर्शन के तादात्म्य में साहित्य जन्म लेता है एवं वस्तु जगत के संपर्क में और पर्यावरण के संदर्भ में पलता है तथा साहित्य के विराट सृष्टि चैतन्य में समाहित होता है।

संभाव्य में व्यष्टि और समष्टि का सत्यबोध, शिवबोध एवं सौन्दर्यबोध अलग-अलग परिणाम में निरंतर परिव्याप्त और परिलक्षित होते हैं। इसमें यथार्थवाद, छायावाद, प्रगतिवाद आदि की भंगिमाओं के उदाहरण हैं।

संभाव्य में आने वाले कवियों, लेखकों, समीक्षकों की संवेदनशील प्रबुद्ध संरचना द्वारा विश्वग्राम के समाज को परस्पर जोड़ने में साहित्य की एक विराट भूमिका की कल्पना करते हुए नववर्ष की शुभकामनाओं के साथ इस अंक को आपके हाथों में ससम्मान प्रस्तुत किया हूँ।

❋❋❋

# रेशमी शहर का ताना-बाना

डॉ० शिवशंकर सिंह 'पारिजात'
भागलपुर (0641-481336)

वैचारिक लेख

प्राचीन काल में 'अंग देश' के नाम से विख्यात भागलपुर की ख्याति आज 'सिल्क नगरी' के रूप में है। पटना-हावड़ा लूप रेल लाईन पर गंगा के किनारे बसे इस शहर की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और लोक-आस्था से जुड़े स्थल तथा पीर-पैगम्बरों के आसतानें आज भी यहां की पुरानी गौरव-गाथा तथा गंगा-जमुनी संस्कृति की दास्तान बयां करते नजर आ रहे हैं।

प्राचीन काल में महाभारतकालीन योद्धा कर्ण की भूमि तथा महत्वपूर्ण व्यावसायिक केन्द्र रहे भागलपुर क्षेत्र का मध्यकालीन इतिहास भी कम रोचक और महत्वपूर्ण नहीं है। शहंशाह अकबर की युगल-सेना बंगाल जाते समय सन् 1573ई. और 1575ई. में इस क्षेत्र से होकर गुजरी थी। भागलपुर के दक्षिण स्थिर उमरपुर (अमरपुर) का नाम शाह शूजा के साथ जुड़ा है। यहाँ के खंजरपुर मुहल्ले में 17वीं सदी में निर्मित-इब्राहिम हुसैन खां का मकबरा मुगलकालीन वास्तु- कला का नायाब नमूना है। भागलपुर स्टेशन के करीब मौलानाचक मुहल्ले में मौलाना शाहबाज द्वारा स्थापित आसताना शाहबाजिया अरबी और फारसी भाषाओं का उत्कृष्ट शिक्षण-केन्द्र रहा है।

भागलपुर में साम्प्रदायिक सद्भाव की बहुत ही पुरानी परम्परा रही है जिस पर यहां के हिन्दु-मुसलमान सहित सभी वर्ग के लोंगों को नाज़ है। सन् 1810 से 1811 ई० में विद्वान ब्रिटिश अधिकारी फ्रांसीसी बुकानन ने अपने 'जर्नल' में लिखा है कि 2 फरवरी को जब वे भागलपुर आये तो यहां के सारे बाशिंदे को मोहर्रम के त्यौहार में मशगूल पाया, जिसके चलते यहां उस दिन कोई भी काम करना माकूल नहीं लग रहा था। उन्होंने अपने 'जर्नल' में भी जिक्र किया है कि मुसलमान तो मुसलमान यहां के हिन्दू लोग भी मुहर्रम में पूरी तरह से शिरकत कर रहे थे।

आज से करीब दो सौ वर्ष पहले बुकानन न यहाँ हिन्दू और मुसलमान के जिस मिली जुली गंगा जमुना संस्कृति को देखा था, वो यहाँ की परम्पराओं में सदियों से विद्यमान है जो इस 'सिल्क नगरी' के सुनहरे धागों में दम-दम चमकता है जिसमें 'ताना' अगर कोई मुसलमान भरता है, तो 'बाना' लगानेवाला हाथ किसी हिन्दू का होता है। रेशम के धागों में यहां के लोगों की जिन्दगी की 'डोर' बंधी है। जैसे रेशम के अनगिनत रंग बिरंगे धागे बुन-गुथकर, साथ मिलकर कपड़ों पर खूबसूरती की एक नई दुनिया गढ़ते हैं, उसी तरह यहां के हिन्दू और मुसलमान मिल-जुलकर जीवन की 'इन्द्रधनुषी' कहानियां रचते हैं।

हां, एक बात और! जब करघा है, तानी है, भरनी है, कपड़े हैं और धागे हैं, तो 'उबान होगा ही! पर यहाँ के कुशल गारीगर अपनी पैनी कैंची से इस तरह उस उबान को काट-छांट देते हैं कि पता ही नहीं चलता कि इसमें कहीं कोई टूट भी है। इस कारीगरी में हाथों का 'हुनर' है तो दिल की 'दिलदारी' भी। भागलपुर शहर जितना पुराना है उतना ही पुराना यहाँ सद्भाव और भाईचारे का इतिहास है। जिसकी नींव बड़ी गहरी है। यही कारण है कि इसे न तो तीस के दशक का महाघातक भूकंप हिला पाया, और न ही 1989 का त्रासद् उन्माद इसकी जड़ें ही हिला पाया। तारीख़ गवाह है कि जब नफ़रत का उन्माद चरम पर था, तब भी यहां दोनों कौम के लोगों ने सद्भाव के 'दीप' जलाये रखे थे

और अपनी जान पर खेल एक-दूसरे की हिफाज़त कर कौमी एकता के शानदार मिसाल कायम किये थे।

भागलपुर में कायम कोमी एकता की पुरानी परम्परा का जिक्र करते हुए 'भागलपुर जिला गजेटियर' कहता है-'भागलपुर जिला एक मामले में एकदम बेजोड़ है : यह विभिन्न धर्मों का संगम-स्थल है। यहां की दो बड़ी कौमें शान्ति और सद्भाव के साथ रहती हैं। वे एक-दूसरे के धार्मिक आयोजनों व त्योहारों में शरीक होते हैं।' (पृ.131-32)। भागलपुर में पीर-पैगम्बरों के पूजन की पुरानी परम्परा रही है जिसमें दोनों समुदायों के लोग समान श्रद्धा के साथ भाग लेते हैं। जिला गजेटियर कहता है कि यहां पीरों की इबादत एक सामान्य विशेषता बन गयी है। पीरों के दरगाह एक धर्म-स्थल बन जाते हैं। भागलपुर में पीरों के कई दरगाह हैं जहां साल के हर दिन और उर्स के मौके पर विशेष रूप से श्रद्धालु आते रहते हैं। बिहार के सूफी-संत जो वजूदिया स्कूल से वास्ता रखते हैं, इस बात में आस्थावान रहते हैं कि वहीं सबकुछ है - 'हमा अस्त'। उन्होंने धर्म के साथ दर्शन को समन्वित किया। सूफियों और पैगम्बरों के आसताने के साथ-साथ उनके मस्जिदों और खानकाहों की भी खास अहमियत रही तथा वे जल्द शिक्षा के केन्द्र व पक्के मदरसे बन गये।

हमारे देश में हिन्दू और मुसलमान के बीच सामंजस्य और सद्भाव का इतिहास बड़ा ही पुराना है। मुसलमानों के भारत आगमन से लेकर इतिहास के विभिन्न दौर में यह प्रक्रिया कैसे परवान चढ़ी, इस पर डा०मुहम्मद उमर ने अपनी शोध-पुस्तक 'भारतीय संस्कृति पर मुसलमानों का प्रभाव' में बड़े ही रोचक ढंग से प्रकाश डाला है। डा०उमर कहते हैं-''सूफी संत बिना किसी धार्मिक पक्षपात और भेदभाव के हिन्दुओं को अध्यात्म की शिक्षा प्रदान करते थे।... सूफी संतों के मजारों पर हिन्दू भी बड़ी श्रद्धा के साथ जाया करते थे और यह परम्परा अबतक चली आ रही है। लम्बे समय तक साथ-साथ रहने का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू और मुसलमानों के बाह्य जीवन में अंतर की कोई रेखा शेष न रही और वे एक-दूसरे के सामाजिक जीवन में बराबर के भागीदार हो गये। वे एक दूसरे के त्यौहारों और शादी-ब्याह के आयोजनों में बड़े हर्षोल्लास से सम्मिलित होते थे।''

डा०उमर आगे बताते हैं कि लखनऊ के अष्टमी मेला और दिल्ली के कालकाजी और कैलाश मेला तथा गढ़ मुक्तेश्वर मेले में बड़ी संख्या में मुसलमान लोग शिरकत करते थे। इसी तरह राजा रामनाथ 'जर्रा' नामक हिन्दू मुहर्रम मनाया करता था और आशूरा के दिनों में हरा लिवास पहनता था। लाला बालमुकुंद अपनी आस्था की दृष्टि से कादरी परम्परा के मुरीद थे। इस प्रकार के और भी कई उदाहरण दिये गये हैं।

यह है हमारे देश की कौमी एकता की शानदार परम्परा जिसके अक्स भागलपुर और बिहार में सहजता से देखे जा सकते हैं।

❋❋❋

## संभाव्य-संदेश

ज़िन्दगी और मौत के बीच सिर्फ एक साँस का फ़ासला है। कुदरत में मौजूद ऑक्सीजन ही साँस के नाम से जाना जाता है। यह ऑक्सीजन ज़िस्म को ज़िन्दा रखने के लिए बेहद जरुरी है जिसे वृक्षों और लताओं ने मुफ़्त में हमारे नाम करने का ऐलान कर रखा है। इसलिए अपने हिस्से के ऑक्सीजन के लिए पाँच वृक्ष अवश्य लगावें।

कविता

# वर्षगाँठ

**डॉ० अश्विनी**
**संपादक, संभाव्य**

मैंने आज तुम्हारा वर्षगाँठ मनाया है
खुशियां बाँटी है
और देखा है
वक्त के आइने में
तुम्हारी तस्वीरें
तुम्हारे चेहरे पर उभरी लकीरें
तुम्हें तोड़ने की साजिशें
तुम्हें मारने की कोशिशें
तुम्हारी होलियां जलायी जाती हैं
छाती पर बैठ कर गोलियां चलायी जाती हैं
मुर्दों को नोंचना बदस्तूर जारी है
अब यहाँ सिद्धान्तों की जमीन पर
धोखा, फरेब और व्यभिचार
उगने लगे हैं
रोटियां जमीन की वीरान कोख में
अब नहीं उगतीं
धरती की कोख में बारूदी सुरंगें
अब उगने लगी हैं।
राक्षसी पंजे संवेदना के धरौंदे
तोड़ने लगे हैं .....
लूटने लगे हैं धरती का अमृत
फैलने लगा है आश्वासन
लफ्फाजी का जहर
होने लगा है तीखा असर
मैं तटस्थता का गीत गाने लगा हूँ
चिल्लाने लगा हूँ अहिंसा और शांति
बोलने लगा हूँ बेजानों की भाषा
तुम्हारे विश्वास की नीति ने
आदमी को आदमी से
अलग कर दिया है
और वह नंगा होकर
रिस्ते के लिजलिजेपन में
डूब गया है
तभी तो
तुम्हारा वर्षगांठ मनाना
एक फैशन है-नारा है
वक्त की आवाज को
झुठलाने की, बरगलाने की
झोपड़ियों और झुग्गियों की भाषा
दबाने की
इसलिये तो मैं समझौतापरस्ती
की चादर तानकर
श्मशान की खामोशी में
डूब गया हूँ , खड़ा हो गया हूँ
मुर्दों की जमीन पर बीचोंबीच
देने लगा हूँ उपदेश
गाँधी, बुद्ध और ईशा
बनने की होड़ में।

कहानी

# माँ

डॉ० अमरेन्द्र
भागलपुर
मो० : 9939451323

क्या माँ को यह मालूम नहीं है कि किस तरह पिताजी के मरते ही बड़े बेटे ने माँ का भी बोरिया-बिस्तर बांध दिया था और मुझसे कहा था- ''ले जाओ माँ को, जहाँ ले जाना है। माँ-बाप का कर्ज सिर्फ बड़े बेटे पर ही नहीं होता, छोटे पर भी होता है।'' यह कहते-कहते मेरा गला रूँध गया, और आज देखो, माँ बड़े बेटे के ही घर जाने की जिद्द मचायी हुई है।

''जिद्द मचाने से ही क्या होगा, माँ को नहीं जाने देना है। पचहत्तर की हुई। देह-हाथ की नसें भी दिखती हैं और उस पर आँखों से लाचार। दिशा-मैदान के लिए बहियार जायेंगी और नहाने के लिए भी उतनी ही दूर नदी पर। यदि कहीं कुछ हो गया तो लेनी की देनी। क्या होगा, एकाध दिन शोर ही न मचायेंगी। फिर समझ जायेंगी कि नहीं ले जानेवाला है, तो खुद ही चुप हो जायेंगी।'' चावल चुनती शैलजा ने अपने सिर को बिना उठाये ही कहा।

''ठीक कहती हो'' मैंने कहा और माँ की ओर एक बार देखकर अपने कमरे में जा बैठा। एक केस के काम को जल्दी-जल्दी निपटाना था। यदि आज खाता पूरा नहीं होगा तो पार्टी भी हाथ से निकलने ही वाली है, जिस प्रकार वह कल गुस्से में बोल कर गया है।

अभी फाइल खोली भी नहीं होगी कि माँ उठकर मेरे कमरे में चली आई, 'दिलो! क्या सोचा है-मेरे जाने के बारे में और बगल में ही रखे टेबुल पर बैठते हुए कहने लगी ''कितने दिनों से तुम लोगों को कह रही हूँ कि मुझे मुकुन्द के घर पहुँचा दो। तुम मेरे बेटे हो, तो वह भी मेरा बेटा है। साल भर हो गया, उनके उठने के बाद मुकुन्द का मुँह आज तक नहीं देख पायी हूँ।''

मन तो यही हुआ कि कह दूँ कि 'तुमको ही कौन सा देखने आये हैं पिताजी के मरने के बाद। तुम जिस बेटे को देखने के लिए बेकल रो रही हो, तुमको नहीं मालूम कि वे तुम्हें देखते ही कितने बेकल हो जायेंगे। कहीं दूसरे ही दिन न कह दें-''माँ, जानती ही हो कि यहाँ नहाने-धोने की कितनी दिक्कत है। तुम दिलो के पास रहती हो तो मुझे भी शांति मिलती है। शहर की बात अलग है, घर में ही पेशाब-पैखाने से लेकर नहाने-धोने की सारी व्यवस्था है। उनके पास तुम्हें वहाँ से भगाने के सौ बहाने हैं।''

शायद माँ को यह बताने के लिए ही कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं अपने कपाल पर दाँया हाथ फेरने लगा। माँ ने कहा, ''देखो, तुम बहाना मत करो कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है और सभी काम तो करते ही हो, सिर्फ मुझे घर पहुँचाने के नाम से तुम्हारी तबीयत खराब हो जाती है या फिर कचहरी में काम बढ़ जाता है। यदि इतनी ही व्यस्तता है तो मुझे देवघरवाली गाड़ी पर बिठा दो, मैं अकेले ही चली जाऊँगी। संतनगर तक ही तो जाना है, गाड़ी द्वार से ही तो होकर जाती है।''

माँ को पहली बार मैंने इस प्रकार बेकल देखा। अभी माँ को कुछ भी कहना ठीक नहीं होगा, यह सोचकर मैं चुप ही रहा। फाइल बन्द की और बाँयी हथेली पर कपाल रखते हुए केहुनी को टेबुल पर टिका दिया तो माँ ने मेरे मन की बात जान ली। वह बिना कुछ बोले ही उठी और अपने कमरे में जाकर बैठ गई।

शैलजा आई और चाय की प्याली को मेरे सामने रख दिया। कुछ बोली नहीं। माँ के कमरे में भी गई और वहाँ भी उनके सामने चाय रख कर रसोईघर लौट गई।

घर में जब भी माँ के जाने की बात उठती है, कुछ देर के लिए माहौल सनसनाता है, फिर पहले की भाँति व्यवस्थित हो जाता है। लेकिन आज वैसी बात नहीं हुई। माँ ने जो कुछ कहा उसमें गुस्से का रंग था जिसे मैंने ही नहीं, रसोईघर में चाय बनाती शैलजा ने भी सुनी थी। यही कारण था कि वह माँ के आगे चाय रखकर बाहर निकल आयी थी। बिना कुछ बोले ही। नहीं तो चाय रखते हुए इतना तो जरूर बोलती-''माँ जी, चाय जल्दी लें लेंगी, नहीं तो ठंडी हो जायेगी।''

माँ को चाय पीने की बहुत आदत है, लेकिन चाय जब तक पूरी ठंडी न हो जाय तब-तक ओठों से नहीं सटाती। चाय पर जब गाढ़ी लाल पपड़ी दूध की छाली की तरह जम जाती, तब माँ उसे ओठों से लगाती।

आज शैलजा का उस प्रकार चाय रखकर निकल जाना माँ को भी अखरा होगा। मैं जानता हूँ, लेकिन वह बोली कुछ नहीं। बस अपने गुस्से को जाहिर करने के लिए उसने प्याली हटा कर एक तरफ कर दी।

मैं समझ गया कि अब अभी घर में रहना मुश्किल है। न तो शैलजा कुछ बोलेगी और न ही माँ। बच्चे सहमे-सिमटे इधर-उधर छुपते फिरेंगे सो अलग। कितने दिनों से बीनू, मंटू और तुलसी देख रहे हैं कि जब-जब दादी कुछ बोलती हैं तब माँ-पिताजी दोनों दिन भर अनखन ही बने रहते हैं और ऐसे में किस समय किसे डाँट पड़ जाएगी और किसे मार, यह कहना मुश्किल था।

कुछ सोचा और चाय सुड़क कर कमीज-फुलपैंट की मांग की तो शैलजा रसोईघर से नहीं निकली। यह बात नहीं थी कि मेरी आवाज उस तक नहीं पहुँची थी, लेकिन सुन कर भी टाल दिया।

क्या करेगी आकर। कौन-सा मैं उसकी बातों का ख्याल रखता हूँ। बस इतना कहती है कि बाहर जा रहे हैं तो खा-पी लीजिए। देर से भी लौटियेगा तो मैं भी निश्चिंत रहूँगी। नहीं तो मन में लगा ही रहेगा कि ..... और शैलजा के इतना कहने पर भी क्या होता, बस वह बोलती रहती और मैं कपड़ा पहनकर बाहर निकल जाता। जब भी ऐसा हुआ है, शैलजा दिन भर भूखी ही रह गयी है। किसी-न-किसी के मुँह से यह बात मालूम हो ही जाती है।

''तुलसी, कमीज-फुलपैंट देना!'' बेटी को आवाज दी तो वह झट से ले आई और बिना नज़र मिलाए उसी टेबुल पर रख लौट गई जिस टेबुल पर कुछ समय पहले माँ बैठी थी। मुझे यह समझने में देर नहीं लगी कि अभी बच्चे भी यही चाहते होंगे कि किसी प्रकार पिताजी घर से बाहर निकल जायें तो अच्छा ही होगा। माँ-दादी का ऐसा गुस्सा तो बच्चों को सहने की जैसे आदत-सी हो गई थी। बाहर निकलने से पहले मैंने अपनी आवाज को तेज करते हुए बिनू से कहा कि माँ से कह देना कि दादी को ठीक समय पर खिलाकर खुद भी खा लेगी। मेरा कोई ठिकाना नहीं है। शाम में लौट सकता हूँ। यदि ग्यारह बजे तक नहीं आया तो समझ लेना कि मैंने किसी होटल में खाना खा लिया है।

घर से निकलते वक्त न शैलजा ने टोका और न ही माँ ने।

आखिर कितना चक्कर मारता। घंटे भर पहले ही कचहरी पहुँच गया। बिल्कुल खाली होता। केस-मुकदमा लड़नेवालों की आवा-जाही तो दो घंटे बाद ही होगी। हाँ, रोज की तरह हरिश्चन्द्र अपने टाइपराइटर पर अंगुली जरूर ही चला रहा था। कल का बचा काम दूसरे दिन पहले ही आकर निपटा लेता है हरिश्चन्द्र। दस आदमी का परिवार चलाता है, वो भी एक टाईपराइटर पर। कचहरी बंद होने के बाद भी एक घंटे तक खुटखुटाता रहता है। उसे कोई मतलब नहीं-कोई बोले, कुछ बोले, न बोले।

मुझे लगा कि मुझसे दस गुना अच्छा है हरिश्चन्द्र। दो सौ रूपये से कम एक भी दिन नहीं कमाता होगा। किसी-किसी दिन तो तीन सौ भी और यहाँ तो पचास-सौ पुराते-पुराते ही परेशान हूँ। वकील बन जाने से ही क्या होता है और पाँच डिग्री लेने से ही क्या। पथ्य का काम करता है तो पुराना चावल ही। जो जितना पुराना वकील, उतना ही नामी। नामी होने के लिए उसे और बीस-तीस सीनियर वकील की पूँछे पकड़े रहना ही पड़ेगी। दिन भर तिमिरदारी कीजिए तो आखिरी समय में हाथ में पचास रूपये इस प्रकार थमायेंगे जैसे जमीन्दारी का कोई पट्टा थमाते हों। अब क्या बताऊँ कि इस आरती के पैसे से जब खैनी का जुगाड़ तक मुश्किल होता है तो परिवार कहाँ से चलेगा....। माँ को यदि पेंशन न मिलता होता तो न जाने मेरा क्या हाल होता। माँ भी सारी बातें समझती है। तभी तो एक तारीख आते ही शैलजा के साथ बैंक से रूपये ले आती है और बाहर-ही-बाहर मकान मालिक के हाथ में किराया थमा देती है। कोई तगादा करने द्वार तक आए, माँ को यह बात बिल्कुल पसन्द नहीं।

'और जब माँ देवघर जायेंगी तब.....' अकस्मात् ही मेरे मन में विचलित कर देनेवाला तूफान उठा था, तब किराया ठीक समय पर कैसे चुकाऊँगा। मान लेता हूँ कि महीना भर के लिए मकान मालिक ठहर भी जाता है, परन्तु यह तो जरूरी नहीं कि महीना भर के बाद माँ लौट ही आयेगी। जा रही है तो लौटने और नहीं लौटने की बात उसके मन पर है। यह तो हो सकता कि मालिक दूसरे महीने की एक तारीख को बिना दोनों महीने का किराया लिए मुक्ति दे दे .....। आज है बीस तारीख। यदि माँ जिद्द ठान ही लेती है तो कल नहीं तो परसों उसे पहुँचाना ही पड़ेगा। .. पिछले महीने से जिद्द कर रही है कि वह तो मैं तीन दिनों तक बीमारी का बहाना कर बिछावन पर पड़ा रहा तो माँ ने जाने के नाम पर अपना मुँह बन्द कर लिया....। एकदम चादर तानकर सोया ही रह गया था मैं। शैलजा भी परेशान रही। न देह-हाथ गर्म है और न ही कँपकँपी। हो सकता है कि देह-हाथ में ऐंठन हो या फिर सिरदर्द के कारण से लेटे रहते हैं। और माँ अपने बिछावन पर बैठे-बैठे बात को समझने की कोशिश करती, आखिर मुझे हुआ क्या है! माँ को मालूम है कि पिताजी के मरने के ठीक सोलह दिन बाद ही मेरे पेट में दर्द उठा था तो पूरे दस दिन तक सम्पूर्ण घर को उधिया दिया था। पिताजी के मरने का दुख जैसे खत्म ही हो गया था। शायद वही याद कर जब मैंने बिछावन पकड़ा तो माँ का चेहरा तीनों दिन बुझा-बुझा सा रहा। शैलजा जैसे ही मेरे कमरे से निकलती कि माँ अपने आँखों पर मोटे शीशे का चश्मा लगाकर बैठे-बैठे ही उसके चेहरे के भाव को समझने की कोशिश करती कि कहीं तबीयत ज्यादा खराब तो नहीं है।

उस दिन शैलजा जैसे ही मेरे कमरे से निकल कर माँ के पास गई, माँ ने बड़ी तेजी से साड़ी के आँचल से अपने चश्मे के शीशे को बारी-बारी से पोछकर आँख पर चढ़ाया और उसके चेहरे को बहुत ध्यान से देखा, जैसे शैलजा के चेहरे पर मेरी तबियत का उतार-चढ़ाव लिखा हो। मुझे हँसी आ गई। माँ देख नहीं पाती। सौ बार कहा होगा कि माँ ठण्डा आ गई, इस बार मोतियाबिन्द का ऑपरेशन करवा लो, लेकिन उसकी तो बस एक ही जिद्द है कि मेरे लिए तो दोनों बेटे-दो आँखें हैं। उन्होंने कहा था कि बेटा अब तो तुम्हीं लोग मेरे आँख हो। ये आँखें रहें या चली जाएं, क्या फर्क पड़ता है।

गाड़ी घर के द्वार से ही होकर देवघर के बस स्टैण्ड पर पहुँचती है। कंडक्टर को पहले ही बता दिया था, इसलिए द्वार पर ही गाड़ी रूकी। सामान ही क्या था-बस एक थैली उसे लेकर माँ के साथ नीचे उतर आया। तेजी से थैली को द्वार पर रखा और दौड़कर गाड़ी पकड़ ली। गाड़ी जाने को हुई तो माँ की ओर नजर घुमाई - माँ के दोनों हाथ आशीर्वाद देने के लिए ऊपर उठे हुए थे।

दोपहर के दो बजते होंगे जिस समय मैं घर लौटा। बिनू, मिंटू और तुलसी स्कूल मे होंगे यह जानी हुई बात थी। शैलजा द्वार पर ही मेरे इन्तज़ार में खड़ी थी।

द्वार पर पैर रखते हुए मैंने अनमने ढंग से सूचना दी कि पहुँचा आया। बड़े बेटे को ही पाले। छाया भी घने वृक्ष को ही मिलती है, ठूंठ को नहीं..... अचानक ही अकचकाते हुए खड़ी शैलजा से पूछा, ''अरे यह चेकबुक तुम्हारे हाथों में... लगता है माँ हड़बड़ी में लेना भूल गई। अब इसे पहुँचाने के लिए देवघर दौड़ो।''

मैंने देखा कि मेरी बात सुनते ही शैलजा की आँखें डबडबा आयीं। उसने कहा कि यह बात नहीं है। जाते समय माँ ने इसे मेरे हाथों में थमा दिया यह कहते हुए कि वैसे तो वह तीन महीने भी नहीं रहेगी, तब माँ की ममता...। मैंने कहा कि वह कहेंगी तो रूकना भी पड़े। तुम घर का ख्याल रखना। यह चेकबुक है। सभी पन्नों में दस्तखत कर दिया है। वैसे तो इतने से पैसों से होता ही क्या है, फिर भी...। शैलजा माँ की एक-एक बात सुना रही थी और मेरी आँखों के सामने दोनों हाथ उठाए फिर माँ खड़ी हो गई थी।

❋❋❋

## संभाव्य-संदेश

माता-पिता के क्रोध को स्थायी समझना और उनके प्रेम पर विश्वास नहीं करना नास्तिक बालक के लक्षण हैं। उसे रोग, शोक और विपत्ति का सामना करना पड़ता है।

लघुकथा

# देवी माँ

उमाकान्त भारती
भागलपुर

लोग उस घुमक्कड़ युवा के बारे में बहुत कम जानते थे। अपना अता-पता एवं जाति-धर्म पूछने पर भी कुछ नहीं बताता था और गुरूद्वारा और गिरजाघर में देखा जाता था। वहाँ वह समस्त भाव से जाता और बड़ी ऊँची- ऊँची बातें करता। उसका कहना था कि ईश्वर एक है और उनके रूप अनेक हैं।

वह बहुत ज्ञानी था। विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं का वह अच्छा ज्ञाता था। उसने सभी धर्मों के पवित्र ग्रंथों का गहन अध्ययन, मनन और चिंतन किया था।

उसके मन में भगवान के साकार रूप के जीवन-दर्शन की इच्छा थी। यही उसके जीवन का अंतिम लक्ष्य था। वह ज्ञानियों और साधकों से ईश्वर- प्राप्ति के मार्ग पूछता। उनलोगों ने उससे कहा कि उसे ब्रह्मज्ञानी मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ, हठयोगी विश्वमित्र, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद आदि सिद्ध ऋषि-मुनियों एवम् महापुरूषों के जीवन से प्रेरणा ग्रहणकर आगे बढ़ना चाहिए, धर्मपीठ या गुफा में बैठकर कठोर तप करना चाहिए, किया भी।

एक दिन वह किसी कारण जख्मी हो गया। कई दिनों तक वह मंदिर के पीछे के कूड़े की ढेर पर पड़ा-पड़ा रुग्ण पिल्ले-सा भूख-प्यास और दर्द से छटपटाता रहा। असह्य कष्ट से घबराकर वह आर्तनाद कर रहा था-''भगवान! मुझे मृत्यु दे दो।''

एक वृद्ध महिला ने उसे उस नरक-कुंड की आग से बाहर निकाला। उन्होंने उसके घावों की सफाई की। उसे डॉक्टर से दिखलाया। तत्पश्चात् उन्होंने उसे बड़े ही प्यार और आग्रह से भोजन कराया। उनकी आँखों से करूणा और ममता बरस रही थीं।

आरोग्य होने के पश्चात् उस वृद्धा ने उस अन्वेषक से मुस्कुराते हुए मधुर स्वर में कहा-''बेटा! अब आप यहाँ से जा सकते हैं।''

अन्वेषक ने उनके श्रीचरणों को पकड़कर कहा कि मुझे यहाँ ईश्वर के दर्शन हुए हैं। अब आपको छोड़कर मैं अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा।

# नताशा की तीन कविताएँ

## विरोधाभास

आख़िर वह पहुंचा वहाँ
जहां सब थे झुके हुए
उसका अकेला तन के रहना
सामाजिक नहीं था
अंततः उसे झुकना पड़ा।

फिर जाना उसने
झुकने के फायदे
झुक कर रहने में
सहूलियत थी
नीचे का पड़ा उठाने में
जिसका सिर पर हाथ था
उसके पाँव सहलाने में
आँखें स्वतः ही बच जाती थीं
सच से नज़र मिलाने में
और आने वाले दिनों में जाना उसने
ज्यों-ज्यों झुका ज्यादा
उठता गया ऊपर ... और ... ऊपर !!!

❋❋❋

## संशय

हजार बार माँ ने कहा
मत सोना
दक्षिण की तरफ पैर करके
मृतक सुलाये जाते हैं
जीवितों को बुरे स्वप्न आते हैं
मैं हर बार सोई
दक्षिण की ही तरफ पैर करके
मुझे कोई स्वप्न नहीं आया
तब से डरी हुई हूँ
कहीं मैं मुर्दा तो नहीं !!!

❋❋❋

## नए शहर में

मेरी सामने वाली खिड़की
बंद पड़ी थी
और मैं
इंतजार में
कि कोई पड़ोसी आए
खिड़की खोल रखी थी
महीनों गुजरे
नहीं खुली खिड़की
और एक दिन अचानक खुली
बाद में जाना
कमरा उसी दिन खाली हुआ था।

❋❋❋

# स्वातंत्रोत्तर कविता

डॉ. सुनील कुमार परीट
बेलगाम, कर्नाटक
मो० : 09480006858

वैचारिक निबंध

''हम सबके दामन का दाग
हमत सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में
टूटी तलवारों की मूठ।''

ये पंक्तियाँ धर्मवीर भारती की हैं जो स्वातंत्रयोत्तर आधुनिक हिन्दी कविता की प्रवृत्ति को दर्शाती है। अब कविता हो या कोई भी साहित्य की विधा, वास्तविकता को ही अपना साधन बना लिया है जो इन पंक्तियों से ज्ञात होता है। इस आधुनिक परिवेश में कुछ भी ठीक नहीं है और सत्य को प्रकट करना ही साहित्य का परम लक्ष्य है। प्राचीन काल में लगभग सभी विद्वान कवि राजा-महाराजाओं के दरबारी कवि बन गये थे जो अपने आश्रयदाताओं को खुश करने के लिए लिखते थे या काल्पनिक रूप से साहित्य का सृजन करते थे। इस काल की कविताओं का सृजन अधिकांशतः दरबारियों, राजाओं और मनसबदारों की चाटुकारिता, स्तुत्यगान और उन्हें प्रसन्न करने के लिए वीरता की झूठी प्रशंसा हेतु किया गया। परन्तु, अब हालात बदल गये हैं। स्थिति-गति के अनुसार साहित्य ने भी अपना रूख बदल लिया है। सच मानो तो साहित्य 'स्वान्तः सुखाय' होता है।

हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आज तक कविता की अजस्र धारा प्रवाहित हुई है। भक्तिकाल में भक्तिपरक रचनाओं की प्रधानता रही। साहित्य के आरंभिक काल से ही कविता का भी श्रीगणेश माना जाता है। भक्तिकाल के अन्तिम सिरे से हिन्दी कविता ऐहिकता की ओर मुड़ी। आधुनिक युग में हिन्दी गद्य के विकास के साथ काव्य-भाषा का भी विकास हुआ। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के काल में देश-प्रेम, समाज-सुधार, व्यवस्था आदि भावों की रचनायें लिखी गईं।

कविता हमारे सर्वोत्तम क्षणों की वाणी हैं। कविता मन के बोल होते हैं। असल में जो सहता है वही खरा लिखता है। वास्तविकता को ध्यान में रखकर जो लिखता है वही खरा साहित्यकार बन के उभरता है। उत्कृष्ट और तीव्र भावावेग जब अनायास होते हैं तब कविता का जन्म होता है। एक साहित्यकार की सर्वप्रथम रचना कविता ही होती है। यानी किसी भी रचनाकार के प्रारंभिक भाव कविता के रूप में उमड़ पड़ते हैं।

छायावादी कविताओं में वैयक्तिकता, देश-भक्ति, रहस्य-भावना, प्रकृति-प्रेम, सांस्कृतिक जागरण आदि की व्यंजना है। रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, साठोत्तरी कविता आदि से गुजरते हुए हिन्दी कविता अनेक काव्यरूपों में ढलती आ रही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर समकालीन कविता तक की विकास यात्रा विभिन्न चरणों से गुजरी है। नवजागरण, छायावादी, छायावादोत्तर, प्रगतिशील नयी कविता के दौर से गुजरते हुए हिन्दी कविता ने परिपक्वता की कई मंजिले तय की हैं। कविताओं के माध्यम से नवजागरण यानी फिर से सजग होने की अवस्था या भाव की अभिव्यक्ति हुई। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा का काल छायावादी काव्य का काल रहा जबकि राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के प्रमुख कवि रामधारी सिंह दिनकर छायावादोत्तर काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध और सुदामा प्रसाद पाण्डेय 'धुमिल' तो हिन्दी कविता के प्रगतिशील काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय तथा श्रीकांत वर्मा का दौर नयी कविता का दौर रहा। अब तो गेय पद और छंदबद्ध कविताओं की कल्पना करना भी मुश्किल हो रहा है। कहते हैं कि ''अगर भावना में कविता के प्राण बसते हैं तो उसकी लय में

उसका शरीर है। शब्दों को लय की वेणी से गूथा जाए तो उसके भाव संगीत की लहर पैदा कर आत्मा तक पहुँचते हैं। आत्मा कितनी पवित्र क्यूं ना हो, शरीर के बिना उसका शिल्प अधूरा है।''

नई कविता आजादी के बाद लिखी गई उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया, जो अपनी वस्तु-छवि ओर रूप-छवि दोनों में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकास होकर भी विशिष्ट है। आधुनिक हिन्दी कविता में वर्तमान युग की समस्याएं, जटिलतायें, विसंगतियां उभर कर आई हैं। साथ में जीवन के प्रति अटूट विश्वास और अखंडित जिजीविषा है। इसलिए इस आधुनिक जटिल परिस्थिति के बारे में हिन्दी के वरिष्ठ कवि श्री राजेश कहते हैं -

''सबसे बड़ा अपराध है इस समय
निहत्थे और निरपराध होना
जो अपराधी नहीं होंगे
मारे जायेंगे ।''

आज कविता ने अपना रूख मात्र नहीं बदला, बल्कि अपना रूप एवं ढाँचा ही बदल लिया है। आज कविता रस-छंद-अलंकार के जंजीरों से मुक्त होकर नदी की तरह स्वछंद बह रही है, लेकिन कविता के पुराने आचार्यो और समीक्षकों व आलोचकों ने नई कविता का बड़ा भारी विरोध किया। यह विरोध छायावाद भी झेल चुका था और प्रयोगवाद भी। लेकिन, नई कविता ने मूल्यबोध की जो समस्याएं उठाई उसके सम्मुख पुरानी पीढ़ी को पस्त होना पड़ा। डॉ. लक्ष्मीकांत वर्मा ने पुराने आलोचकों को जवाब देने के लिए 'नई कविता के प्रतिमान' पुस्तक लिखी है। जिसके द्वारा उन्होंने विश्वास दिलाने का प्रयास किया है कि नई कविता भी पुरानी कविता से कुछ कम नहीं है। परन्तु स्वातंत्र्योतर कविता में ऐसे स्वर उभर आये हैं कि कविता निडर बनकर स्वछंद बह रही है। इस समय कविता ने राजा से लेकर रंक को भी अपना साधन बना लिया है, चाहे वह शासक हो या पुलिस हो या गरीब भिक्षु हो, सबको आज की कविता वास्तविक यथार्थ का चित्रण करती है। श्री देवेन्द्र कुमार मिश्रा की एक ताजा कविता प्रस्तुत है -

'पुलिस आगे है, चोर पीछे है
हमने कहा, ये क्या हैं
चोर बोला - हम लूटते थे तो हिस्सा देते थे
अब डायरेक्ट यै लूट रहे हैं
हिस्सा माँगा तो भाग रहे हैं।।''

आज भी कबीर और रहीम के दोहों में हम सही दिशा खोज पाते हैं। आज भी दिनकर ओर सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं को पढ़ते ही हमारा खून उबलता है। महादेवी वर्मा और जयशंकर प्रसाद का दर्द और गम को देख कर आज भी हमारी आखें नम हो जाती हैं। मैथिलीशरण गुप्त की यशोधरा और बच्चन की मधुशाला का प्रतिबिम्ब आज भी हमारी यादों में विद्यमान है। तो, आगे हमारा कर्तव्य बनता है कि छंदों, रसों और अलंकारों से सृजित होने वाली मर्मस्पर्शी हिन्दी कविता का सृजन हो, नहीं तो कविता आधुनिकता की दौर में असहाय नजर आने लगी है। इसके जिम्मेदार स्वातंत्र्योतर कवि, पाठक और श्रोता सबको मानना ही पड़ेगा। आधुनिक दौर में गद्य को पद्य और पद्य को गद्य बनाने की नई परंपरा शुरू हुई है। यह चिंतनीय बात है कि स्वतंत्रता के बाद कविता के स्वर, रूप-रंग ही बदल गये हैं।

कविता मन की भावनाओं का दर्पण है। माना कि आज प्राचीन काल सा अलंकारयुक्त छंदोबद्ध कविता नहीं है, पर कहावत है कि कुछ पाने के लिए कुछ खोना भी पड़ता है। ऐसी ही स्थिति है आज स्वातंत्र्योतर कविता की। अलंकार से श्रृंगारित छंदोबध्द कविता नहीं है, पर भाव प्रधान अलौकिक कविता हमारे बीच है। कविता ने पद्य रूप से गद्य रूप भी धारण कर लिया है। शायद ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल के साहित्यकारों में जो गुणवत्ता थी, वह आज नहीं। इसलिए यहाँ अंत में उन महान विद्वान साहित्यकारों को हम कभी नहीं भूल सकते, उन्हें हमारा शत-शत प्रणाम....

''अज्ञेय-प्रसाद-पंत-निराला
महादेवी वर्मा
सब चले गये आगे
महाप्राण।
हम सबकुछ सीख पाते
उनके जमाने में
पर हम रहे गये पीछे
अल्पप्राण।''

❋❋❋

## ग़ज़ल

अभिनव अरूण
वरिष्ठ उद्घोषक
आकाशवाणी, वाराणसी
मो० : 9415678748

अपनों ने अगर पीठ पर मारा नहीं होता,
दुनिया की कोई जंग वो हारा नहीं होता।
चलती हुई कलम में इन्क़लाब का दम है,
शब्दों से खतरनाक शरारा नहीं होता।
हालात सिखा देते हैं कोहराम मचाना
ख़ामोश मिजाज़ी से गुजारा नहीं होता।
बचना जरा कि मिलते हैं पैकेट में बंद लोग
भीतर के आदमी का नज़ारा नहीं होता
हर दौर में गैलीलियो को कैद मिली है,
सच हर किसी की आँख का तारा नहीं होता।
उन छूटती साँसों को दो अपनों का प्यार भी,
पेंशन की रकम ही से गुजारा नहीं होता।
तहज़ीब, अदब और सलीका भी तो कुछ है,
हम भी नहीं हो जाते वही पीर कलंदर,
नर सोच में ये मेरा-तुम्हारा नहीं होता।

❋❋❋

## समुद्र

कविता

डॉ० रंजना जयसवाल
संत जोसफ कॉलेज, गोरखपुर

तुम समुद्र थे
अपने प्रेम के बारे में
ज्योंहि कहा मैंने
तुम मुस्कुराए
तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ तुम्हें
ना अभिमान, ना संकोच
ना गुस्सा, ना अपमान-बोध
कभी भी नहीं
जबकि तुम समुद्र थे ।

मैं एक छोटी नदी
अब मैं चकित थी
संकोच से धरती निहारती
तुमने कहा-'मैं सब जानता हूँ सब'
सब जानकर भी तुम स्थिर थे और मैं आतुर
तुमने कहा-मोड़ दो इस प्रेम को
लेखन की तरफ
मै उसी में मिलूंगा तुम्हें
अब निरंतर बह रही है एक नदी
समुद्र को समेटे अपने भीतर।

❋❋❋

# नयी कहानी के सूत्रधार : डॉ. राजेन्द्र यादव

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

शतदल मंजरी
गुड़गाँव हरियाणा
मो० : 8292090400

प्रेम उसी से किया जा सकता है जो प्रेममय हो, जो हमारे हृदय में सावन के झोंके के समान आए और हमें सुरभित कर दे, हमें अपना बना ले जिसमें कोई स्वार्थ न हो, जो हमें अपने रंग में रंग ले, जो हमें भी प्रेममय बना ले और... इस प्रकार से प्रेम की धारा वही प्रवाहित कर सकता है जो स्वयं प्रकृतिमय हो और पूर्णता भी वही प्रदान करता है जो स्वयं पूर्ण हो।

ऐसे थे मूर्द्धन्य साहित्यकार डॉ. राजेन्द्र यादव जो आज हमारे बीच नहीं रहकर भी जीवित हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माताओं में इनका योगदान स्तुत्य है। हिन्दी भाषा के उत्थान में इनकी भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण रही है। ये हिन्दी के महान लेखक, कहानीकार, उपन्यासकार व प्रसिद्ध आलोचक थे। नये युग में 'नयी कहानी' के नाम से हिन्दी साहित्य में (मोहन राकेश और कमलेश्वर के साथ) उन्होंने एक नयी विधा का सूत्रपात किया है।

हिन्दी साहित्य के अनन्य समर्थक, संरक्षक राजेन्द्र यादव का जन्म 28 अगस्त सन् 1929 ई० को आगरा में हुआ था। इनके पिता का नाम डॉ.एम.एल. यादव था। इनकी पत्नी का नाम मन्नू भंडारी जो सुपरिचित एवं सुप्रसिद्ध लेखिका है और एक पूरी रचना है।

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी द्वारा स्थापित और संपादित 'हंस' अपने समय की अत्यंत महत्वपूर्ण पत्रिका रही थी। इसके बाद महात्मा गाँधी और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी दो वर्षों तक हंस के सम्पादक रहे थे। मुंशी प्रेमचंद जी की मृत्यु के बाद हंस का सम्पादन उनके पुत्र प्रसिद्ध कथाकार अमृतराय ने किया था। उसके बाद सन् 1953 से हंस का प्रकाशन बंद रहने के बाद मुंशी प्रेमचंद के जन्मदिन 31 जुलाई 1986 से अक्षर प्रकाशन ने प्रसिद्ध कथाकार राजेन्द्र यादव के सम्पादन में हंस को एक कथा-मासिक के रूप में फिर से प्रकाशित करते की ठानी। राजेन्द्र यादव ने पत्रिका के प्रकाशन का दायित्व स्वयं पर लिया और अपने मरते दम तक पूरे 27 वर्ष निभाया।

उनकी प्रकाशित पुस्तकें -

**कहानी संग्रह** - देवताओं की मूर्तियाँ (1951), खेल खिलौने (1953), जहाँ लक्ष्मी कैद है (1957), अभिमन्यु की आत्महत्या (1959), छोटे-छोटे ताजमहल (1961), किनारे से किनारे तक (1962), टूटना (1966) चौखटे तोड़ते त्रिकोण (1987) श्रेष्ठ कहानियाँ, प्रिय कहानियाँ, प्रतिनिधि कहानियाँ, प्रेम कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ, मेरी 25 कहानियाँ, आतिश गालिबा (प्रेम कहानियाँ) (2008) ।

**उपन्यास** - सारा आकाश ('प्रेत बोलते है' (1951)
उखड़े हुए लोग (1956)
कुलंटा (1958)
शाह और मात (1959)
अनदेखे अनजान पुल (1963)
एक इंच मुस्कान (मन्नू भंडारी के साथ) (1963)
मंत्र-विद्या (1967)
एक था शैलेन्द्र (2007)
कविता संग्रह - आवाज तेरी है (1960)
समीक्षा निबंध - कहानी : स्वरूप और संवेदना (1968)
प्रेमचंद की विरासत (1978)
अठारह उपन्यास (1981)
औरों की बहाने (1981)
कांटे की बात (बारह खंड) (1994)
कहानी : अनुभव और अभिव्यक्ति (1996)

**उपन्यास** : स्वरूप और संवेदना (1998)

आदमी की निगाह में औरत (2001)
वे देवता नहीं हैं (2001)
मुड़-मुड़कर देखता हूँ (2002)
अब वे वहाँ नहीं रहते हैं (2007)
मेरे साक्षात्कार (1994)
काश, मैं राष्ट्रद्रोही होता (2008)
जबाब दो विक्रमादित्य (साक्षात्कार) (2007)

**संपादन** :

प्रेमचंद द्वारा स्थापित कथा-मासिक 'हंस (अगस्त 1986 से), एक दुनिया समानान्तर (1967), कथा दमक : हिंदी कहानियाँ (1981-90) आत्मतर्पण (1994), अभी दिल्ली दूर है (1994), काली सुर्खियाँ (अश्वेत कहानी-संग्रह) (1994), कथा-यात्रा (1967), अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य (2000), औरत उत्तरकथा (2001), देहरी भई विदेश, कथा जगत की बागी मुस्लिम औरतें, हंस के शुरूआती चार साल (2008) (कहानियाँ), वह सुबह कभी तो आएगी (सांप्रदायिकता पर लेख) (2008), चैखव के तीन नाटक (सीगल तीन बहनें, चेरी का बागीचा।

**अनुवाद** : उपन्यास - टक्कर (चैखव)

हमारे युग का एक नायक (लर्मन्तोव), प्रथम-प्रेम (तुर्गनेव), वसन्त प्लावन (तुर्गनेव), एक मछुआ : एक मोती (स्टाइनबैक), अजनवी (कामू) ये सारे उपन्यास 'कथा-शिखर' के नाम से दो खंडों में (1994), नरक के जानेवाली लिफ्ट (2002) उल्लेखनीय हैं।

डॉ. राजेन्द्र यादव को उनके समग्र लेखन के लिए हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा वर्ष 2003-04 का सर्वोच्य सम्मान (श्लाका सम्मान) प्रदान किया गया था। डॉ. राजेन्द्र यादव को प्रतिभाओं की पहचान थी। प्रतिभा को पहचान कर उसे सम्मान देते थे और उनसे काम लेते थे। 84 वर्ष की अवस्था में भी उनमें लगन और समन्वयात्मक वृत्ति अद्‌भुत थी जिससे वे स्वयं भी काम करते थे और अधिकारीवर्गों को जोड़कर उनसे काम करवाते थे। नए-से-नए लेखकों को जोड़ते थे। उनमें विश्वास जगाते थे और उनसे काम लेकर उन्हें काम का बना देते थे। इसलिए उन्हें 'ग्रंथों का ही नहीं, ग्रंथकारों का भी निर्माता कहा जाता है।

''साहित्य और साहित्यिक संस्था'' के संगठन की सूझ-बूझ उनमें बहुत प्रखर थी। उनके कार्य - क्षेत्र की विविधता, व्यापकता, दुरूहता और गंभीरता इतनी प्रबल थी कि आश्चर्य होता है कि एक व्यक्ति इतने कम समय में इतना अधिक और इतना महत्वपूर्ण कार्य एक साथ कैसे कर सके।... सच्चे ईमानदार व कर्मठ पुरुषार्थ की यह विजय-यात्रा कर्मरत रहने की प्रेरणा प्रदान करती है।

❋❋❋

## संभाव्य-संदेश

जिनके व्यवहार, क्रिया और वाणी में मधुरता होती है उन्हें सभी सम्मान देते हैं। शुभ कर्म और उपकार ही सज्जनों के भूषण हैं। अतः शिष्टता धारण करें।

कविता

# याद आती है गाँव की

डॉ.जी.पी.सिंह
संपादक, संभाव्य

शहर में महल हैं, मशीन हैं
पर्वत की काया से बनी सड़के हैं
सड़कों पर लोग हैं अनगिनत
फिर भी वीरानी नहीं जाती।

जेठ की तप्त दोपहरिया में
किसी अधखुली खिड़की से
रह-रहकर एक टीस निकलती है
जो किसी पश्चिमी संगीत की तीव्र धुन में
शायद कम पर जाती है
उस टीस की कमनीयता
एक नवोढ़ा का चित्र बनाती है
जिसकी पनियारी आँखों में
गाँव की सूनी पगडंडी है
दूर-दूर तक फैली खेत हैं
गोधूलि में गर्द आसमान है
पेंगे पर झूलते बचपन हैं।

बहुत याद आती है गाँव की
छोटे-छोटे घर हैं
घरों में लोग हैं,
सुकुमार मन के

वहाँ सबसे अधिक शान्ति है,
सुकून है
वहाँ शहर का सिमटा संसार नहीं,
अपनापन है

विशाल आसमान के नीचे
सृष्टि का भोलापन है
वहाँ छल नहीं, व्याघात नहीं
आघात नहीं, प्रतिघात नहीं।

***

# स्वच्छ गगन में

डा०अन्नपूर्णा वाजपेई
विराट नगर, अहिरवा, कानपुर
मो० : 9236555679

स्वच्छ गगन में
सुवर्ण भी धूप
भोर की किरण ने
आ जगाया।

अर्ध उन्मीलित नेत्र
उनींदा मानस
आलस्यपूरित
यह तन मन
पंछियों ने राग सुनाया।

कामिनी सी कमनीय
सौंदर्य की प्रतिमा
नैसर्गिक छटा
फैली चहुं ओर
मुसकाते सुमन
झूमते तरूवर
नव जोश जगाया।

हुआ प्रफ्फुल्लित ये मन
तोड़ कर मंथर बंधन
मानो रोली कुमकुम
आ छिड़काया।

***

कहानी

# औरत का प्रेत

डॉ. आभा पूर्वे
भागलपुर
मो० : 9334207998

सुनीता अपने विभाग से छुटी तो सीधे पर लौट आयी। अब उसकी देह में इतनी भी ताकत नहीं रही कि दो क्लास के बाद तीसरे की भी बात सोचे। एक ही क्लास के बाद तो उसे ऐसा लगने लगता है जैसे उसके बदन से सारा खून रिस गया हो और वह किसी भी क्षण लड़खड़ा कर गिर पड़ेगी। इसी से उसके हिस्से का क्लास जैसे ही खत्म होता है वह रिक्शे पर बैठ सीधे घर को चली आती है।

आज भी जैसे ही वह क्लास से छूटी थी, घर लौट आयी थी। घर के दरवाजे के अन्दर जैसे ही उसने कदम रखा था कि फर्श पड़ा उसे एक लिफाफ मिला। डाकिया फेंक गया था। जब भी डाकिया आता है, इसी तरह चिट्ठियाँ फेंक जाता है। इसके लिए उसे उस पर क्रोध भी आता है, लेकिन क्रोध पी लेने के सिवा कुछ सोचकर ही वह कुछ और नहीं करती और न कुछ कहती ही है। लिफाफ हाथ में उठाकर पता पढ़ती है। बोकारो से चिट्ठी आयी है। सुनीता का दिल अचानक ही इतना तेज ध ाड़कने लगता है। जैसे वह बाहर निकल कर अभी-अभी फर्श पर लिफाफे की तरह जा पड़ेगा। वह अपने दोनों हाथों से अपने हृदय को दबा लेती है और कमरे में सीधे आकर लिफाफ खोलती है। दीदी का पत्र दीदी के हाथों का ही लिखा हुआ। उसका मन शांत हो उठता है। चलो दीदी की तबीयत ठीक है तभी तो वह पत्र लिख पायी। सुनीता निश्चित होकर पत्र को पढ़ती है -

प्रिय सुनीता,

खुश रहो।

आशा है तुम सकुशल पहुँच गयी होगी। इस बार तुम सचमुच हमलोंगों का दिल जीतकर गयी हो जिसका अनुभव हमलोग तुम्हारी अनुपस्थिति में महसूस कर रहे हैं। तुम्हारे प्रवास के दौरान हमलोगों ने कुछ ऐसे भी वचन कहे जिससे तुम्हारे मन को ठेस भी पहुँची होगी, लेकिन हमलोगों के दिल में जो एक प्यार तुम्हारे लिए जगा, शायद वह कभी भुलाये नहीं भुलाया जा सकता। हमलोग सारी-सारी रातें तुम्हारी ही बातें करते रहते हैं। तुम्हारे जाने से जो एक सूनापन भर गया है उससे ऐसा लगता है मानो घर से बेटी की ही विदाई हो गयी हो।

बच्चे तुम्हें काफी याद कर रहे हैं। सबको सामान्य होने में कुछ समय लगे। यह ठीक ही है और स्वाभाविक भी। तुम्हारे जाने से घर का माहौल ही बदल गया है। शेष कुशल है।

तुम्हारी दीदी।

सुनीता को दीदी के पत्र में वह सब कुछ भी दिखा था जिसके बारे में उन्होंने नहीं लिखा था। उसने पत्र को मोड़ा और फिर लिफाफे में डाल कुछ सोचने लगी। सोचने लगी तो सोचती ही चली गयी।

ठीक आज से पाँच वर्ष पूर्व। तब दीदी की शादी हुई थी। कम खूबसूरत नहीं थी दीदी। खूबसूरत तो वह आज भी है, लेकिन उस समय की बात ही कुछ और थी। दीदी मुझसे दो साल बड़ी थी और दीदी के ठीक दो साल बाद ही मैं उस उम्र में पहुँच गयी थी जहाँ पर दीदी दो साल पूर्व थी। दीदी के पति ने मुझे हैरत और अपनत्व से देखा था। मुझे भी उनका इस तरह से देखना इतना अच्छा लगा था कि...। और इन बातों ने कुल मिलाकर दोनों को बहुत करीब कर दिया था। यह करीबी ऐसी तो नहीं थी कि कोई शंका करें, लेकिन दीदी को वह बुरा लगने लगा था। यहाँ तक कि अपने पति के करीब मेरा बैठना भी उसे बुरा लगता। जब कभी जीजाजी मुझसे चाय बनाने को कहते तो दीदी स्वयं ही चाय बनाकर ले आती। मुझे तब उनके मन का

कुछ ख्याल नहीं था। यह नहीं कि मैं सब कुछ जानकर भी उनके मन को दुखा रही थी, बल्कि मुझे तब तक यह पता ही नहीं था कि एक बहन अपनी बहन के लिए इस हद तक सोच सकती है। यह बात तो तब खुली थी जब दीदी ने मेरे ही सामने माँ से रोते-रोते कहना शुरू किया था -''आखिर कब तक चुप रहूँ। सुनीता बच्ची नहीं है कि उसकी सारी हरकतों को बर्दाश्त करती रहूँ मैं। वे मेरे पति हैं, सुनीता के नहीं। जब कभी भी वह आते हैं, यही चाय देती है, यही नाश्ता देती है, यही खाना खिलाती है और यही शाम को उनके साथ घूमने भी जाती है। क्या मेरे मन में यह सब करने की इच्छा नहीं होती! बचा रहता है तो यही न कि....।''

दीदी अचानक ही रूक गयी थी। बहुत चाहकर भी वह यह नहीं कह पायी थी जिसे वह पूरी ताकत लगाकर कह देना चाहती थी। बस उसकी जगह इतना ही कह पायी थी-''अच्छा होता कि उनसे मेरी नहीं, सुनीता की शादी होती।'' इतना कहकर दीदी फुटफूट कर रोने लगी थी। इतना फूट-फूटकर कि उसकी कही बातों पर गुस्साने की जगह मैं द्रवित हो उठी थी। मुझे अपने आप पर भी गुस्सा आया था। मैं साचने लगी थी कि आखिर मैं क्यों दीदी के प्राप्य पर अपना हक बनाने लग गयी हूँ।

उस दिन के बाद से एक अजीब-सी दूरी मेरे और दीदी के बीच बन गयी थी। यह दूरी मुझे भी उनके पति कमलकान्त से दूर करती चली गयी। कमलकान्त को इन सब बातों की कुछ भी जानकारी नहीं हुई थी। होती भी कैसे, इस घटना के बाद घर में एक ऐसी खामोशी छायी रहती जिसकी कल्पना कोई कर ही नहीं सकता। वह जब कभी भी मेरे पास आये या मुझे ही उनके पास जाना पड़ा तो इतने ठंडे संबंध से दोनों ही हतप्रभ हुए। कमलकान्त ने कितने सवाल किये थे, कितना कुछ जानना चाहा था, पर घर की चुप्पी से सभी बंधे थे। मैं कैसे टूट जाती। बहुत होता तो बस हँस देती। तब मेरी उस हँसी से कमलकान्त कुछ उत्तर तलाशने की कोशिश करते, पर वहाँ उत्तर होता तब तो ... एक दिन उन्होंने मुझे एकांत पाकर मेरी कलाई को पकड़ लिया था। शायद कुछ कहना चाह रहे थे, लेकिन मैं शायद कुछ सुनने को तैयार नहीं थी। एक झटके से कलाई छुड़ाती हुई मैंने कहा था - ''बदतमीजी की भी हद होती है।''

सचमुच मैं इस कथन से उन्हें हतप्रभ कर दिया था और अपने से बहुत अधिक दूर भी। इतनी दूरी मुझमें और दीदी में भी नहीं थी और एक दिन मैंने दीदी को भी माँ से इस बारे में कहते सुना।

मैंने वह सब कुछ सुना था जो दीदी माँ से कहती जा रही थी, लेकिन न तो मैं हतप्रभ हुई थी और न ही आश्चर्यचकित । मुझे मालूम था कि झटके से कलाई छुड़ा लेने के बाद कमलकान्त मेरे साथ ऐसा व्यवहार कर सकते थे जो कुछ पूर्व तय था। उससे मेरा दुखी न होना भी मुश्किल ही था।

कमलाकान्त सचमुच में कुछ ही दिनों के बाद दीदी को लेकर बोकारो चले गये थे। तब से उनका आना-जाना बिल्कुल रूक ही गया था। न एक पत्र उधर से आया था न इधर से मैंने ही कभी डाला।

साल पर साल बीतते गये थे। रिश्ते का ठंडापन इतना ठंडा हो गया था जैसे दीदी या कमलकान्त के होने का अहसास भी एकदम मर गया हो। वह तो अचानक कमलकान्त की चिट्ठी लेकर श्याम आया था जिसमें दीदी के महीने भर से बीमार होने का उल्लेख था जैसे दीदी शायद ही बचे। मैं अपने आप को किसी भी तरह रोक नहीं पायी थी। श्याम के साथ ही उसी दिन शाम को गाड़ी से बोकारो रवाना हो गई थी.. सचमुच दीदी रोग से जर्जर हो गयी थी। उसकी सेवा में मेरी सारी ताकत उमड़ आयी थी। बस ऐसा कि मैंने पूरा घर ही संभाल लिया था। दीदी के दो बच्चे और अस्त-व्यस्त बने कमलकान्त को व्यवस्थित बनाने में मैं तन्मय हो गयी थी। वह तो ईश्वर की ही कृपा कहूंगी कि रेगिस्तान बनती हुई एक वनस्थली फूलों के उपवन में बदल आयी थी। सब कुछ ठीक-ठाक हो गया था और मैं सारे मोह को तोड़ती हुई पुनः घर लौट आयी थी।

महीने भर बाद यह दीदी की चिट्ठी आयी है। मेरी सेवा से सचमुच दीदी और कमलकान्त एकदम भींग गये हैं। मैंने लिफाफे से फिर एक बार चिट्ठी निकाल ली और एक-एक शब्द को रूक-रूककर पढ़ना शुरू किया। पत्र के वाक्य पाँच वर्ष पूर्व दीदी के कहे वाक्यों में परिवर्तित होते चले गये.. वे मेरे पति हैं, सुनीता के नहीं। जब कभी वह आते हैं यही चाय देती है, यही नाश्ता देती है, यही खाना खिलाती है और यही शाम को उनके साथ घूमने भी जाती हैं ...। यह उनका पत्र नहीं, दीदी का स्वार्थ बोल रहा है। सोचते-सोचते सुनीता को लगता है कि उसके शरीर का सारा खून निचुड़ कर फर्श पर फैल गया है और वह भी धीरे-धीरे पसरे लहू से सनती चेतनाहीन हुई जा रही है। उसे लगता है कि किसी ने अपने मजबूत पंजे से धर दबोचा है। सुनीता आँख उठाकर उसे पहचानने की कोशिश करती है। दीदी की छाया लगती है और फिर छाया दीदी बन जाती है जो उससे साल भर पूर्व की हुई बातों को फिर से कहने लगी है.. उन्हें नहीं, शर्म तुम्हें आनी चाहिये। अरे तुम्हारे जीजाजी तो मर्द जाति के ठहरे और मर्द के लिये कोई बंधन नहीं होता। बंधन तुम्हारी जैसी लड़कियों के लिए जरूरी है, नही तो एक भी औरत इस धरती पर सही सलामत नहीं रहे ...।

सुनीता ने देखा था कि दीदी का चेहरा उसी तरह तमतमाने लगा था पाँच साल पहले की तरह, पर इस बार सुनीता ने बड़े ही ठंडे और संतुलित स्वर में दीदी को समझाते हुए कहा था-''दीदी, स्त्री के असुरक्षित होने के कारण पुरुष जाति नहीं, बल्कि इसका सबसे बड़ा कारण स्त्रियों का स्त्रियों के प्रति शंका और अविश्वास है। जब तक तुम या मैं या फिर कोई भी औरत अपने ही आदिम संस्कार को जीतने की कोशिश नहीं करती, तबतक कोई भी स्त्री पुरुष के सामने हारती रहेगी। एक औरत के लिए पुरूष प्रेत होता है या नहीं, यह मैं नहीं जानती, लेकिन एक औरत की जिन्दगी जब भी तबाह हुई है तब बस यही समझो कि औरत के प्रेत ने उसे तबाह कर दिया है। दीदी, तुम अपने प्रेत से बचो।''

यह कहती-कहती सुनीता अचानक ही वयस्क हो गयी थी, इस हद तक जैसे कोई जवान अचानक बूढ़ा हो जाय। उसने बुढ़ापे की उसी अनुभवी आँखों से दीदी को फिर से निहारा था जो अब वहाँ पर नहीं थी। छाया भी नहीं थी। सुनीता की आँखों में आंसू की एक हल्की लकीर उभर आयी और हँसी की एक पतली लकीर उसे अधरों पर हठात ही छिलक आयी।

सुनीता कुछ क्षण रूकी और फिर अपने में एक नयी स्फूर्ति को लाती हुई उसने एक कागज पर आज के स्वप्न को, संवाद को लिपिबद्ध कर दिया था और एक क्षण भी आराम किये बगैर डाकखाने की ओर बढ़ गयी थी उसे डाक में छोड़ने ताकि कहीं अगले क्षण फिर उसका यह इरादा बदल न जाय।

❋❋❋

## संभाव्य-संदेश

जो वस्तु हमारी है वह हमें मिलेगी ही जिसे दूसरा नहीं ले जा सकता। अतः अतिशय महत्वाकांक्षा का शिकार न होकर कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए और संतुष्ट रहना चाहिए।

## ग़ज़ल

**अशोक मिजाज़**

**सागर, मध्यप्रदेश**

नज़रों के सामने था मगर ढूँढते रहे
अपनी गली में अपना ही घर ढूँढते रहे

मौकापरस्त हम से भी आगे निकल गये
हम अपनी कोशिशों में कसर ढूँढते रहे

उसके लिए तो हमने सफर पर सफर किये
जिसने जिधर बताया उधर ढूँढते रहे

जब मर गया फकीर तो सबकी नजर गई
झोली में उसकी लालो-गुहर ढूँढते रहे

तस्वीर तेरी मेज पर और ख़त दराज़ में
इक चीज़ इधर रखके उधर ढूँढते रहे

## तरही ग़ज़ल

मुझको ख्याल ओ ख़ाब से फ़ुर्सत कहाँ है अब
दिल में ग़ज़ल के प्यार का दरिया रवाँ है अब

गुमनाम जिंदगी से मुझे कुछ गिला नहीं
तारीख़ की जुबां पे मेरी दास्ताँ है अब

बढ़ते ही आ रहे हैं मेरी सिम्त काफ़िले
शायद मेरी तलाश में खुद कारवाँ है अब

मेरी तलाश खत्म हुई, सिर भी झुक गया
मेरा मकाम सिर्फ तेरा आस्ताँ है अब

बदला हुआ है आज मेरे वक्त का मिजाज़
कल तक ख़फा-ख़फा-सा था वो मेहरबां है अब

❋❋❋

## ग़ज़ल

**शाकिर ख़ान**

**शाहीन बाग, नई दिल्ली**

**मो० : 9999259199**

इस तबस्सुम को ग़मों में लुटा मत देना
कोई आंसू का मोती आँखों से गिरा मत देना

ख़ाब में आये हैं दोस्त थोड़ा वक्त निकालकर
गुफ्तगू जारी है नींद से जगा मत देना

शहजादा कोई आएगा है उम्मीद उसको भी
जमाने की हक़ीकत उसे बता मत देना

घोंसले गिर चुके इनकी तरक्की की आंधी में
जो बैठे हो पंछी मुंडेर पर उड़ा मत देना

इस बज़्म में 'शाकिर' तमाशबीन बहुत हैं
हाल-ए-दिल अपना खुद को भी सुना मत देना

❋❋❋

## एक अजन्मा

डा. मनाजिर आशिक हरगानवी

भागलपुर

बड़े शहरों के चहकते पक्षी
झुलसकर गिर पड़े
और-जले-अधजले शव पड़े थे
अजन्मा, एक कोई आंगन में
छितर गया
और गृहिणी .....
कभी-कभी चेत होता है
रक्त से सने हाथ
और पुते हुए चेहरे
किसका शाप है यह आदमी को ? ...

संस्मरण

# मधुर स्मृति का मधुरांकन

रवि कुमार गोंड
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश
मो० : 09318133037

वैसे तो आधुनिक हिन्दी-गद्य की कई विधाएँ ऐसी हैं, जिनके तत्व परस्पर इतने घुलेमिले होते हैं कि उन्हें परस्पर अलग-अलग कर पाना दुष्कर होता है। इसीलिए संस्मरण और रेखाचित्र एक साथ स्पष्टीकरण सहित कि वर्तमान कालावधि में संस्मरण अधिक लिखे गये हैं, रेखाचित्र कम।

'स्मृति-लोक' एवं वरिष्ठ साहित्कार श्री शिवभजन 'कमलेश' जी की एक बहुमूल्य संस्मरणात्मक कृति है। संस्मरण लिखने की परम्परा भी बहुत पुरानी है। यह आधुनिक कालावधि से कुँवर सुरेश सिंह : 'यादो के झरोखे' (1980), विष्णु प्रभाकर : 'यादो की तीर्थ यात्रा' (1981) राजेन्द्र यादवः 'औरों के बहाने' (1981) अमृत लाल नागरः 'जिनके साथ जिया' (1981) पद्मा सचदेवः 'दीवानखाना' (1991), काशीनाथ : 'याद हो कि न याद हो' (1992), रामदरश मिश्रः 'स्मृतियों के छंद' (1995), कृष्णा सोबतीः हम हशमत (दूसरा भाग), विकेकी रायः 'मेरे सुहृद श्रद्धेय' (2005) आदि से होती हुई सममसामयिक गद्य संस्मरणात्मक परम्परा में आकर डॉ. शिवभजन कमलेश जी की संस्मरणात्मक कृति 'स्मृति-लोक (2011) तक अबाध रूप से आकर ठहरती है। 'स्मृति लोक' संवेदनात्मक संस्मरण कृति हैं इस संस्मरणात्मक कृति की भूमिका हिन्दी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान प्रोफेसर डॉ. हरिशंकर मिश्र आचार्य हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ द्वारा लिखी गई है जो बड़े ही सारगर्भित शब्दों में रचित हैं उसके बाद प्रेमचन्द्र सैनी जी द्वारा श्री कमलेश की कृति उपयोगिता को चित्रित किया गया है और साहित्यकार श्री कमलेश द्वारा अपने आत्मकथ्य को प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक 'स्मृति लोक' में कुल 16 संस्मरण लेख हैं जो साहित्यकार के जीवन से निकटतम संबंध स्थापित करती है। कृति का पहला संस्मरण लेख 'शुण रसिया' नाम से है। 'शुण रसिया' लेखक और भाभी की अविस्मरणीय मधुर स्मृति का मधुरांकन है। इसमें वात्सल्य प्रेम का अमृत धारा दिखाई पड़ती है। 'शुण रसिया' संस्मरण वर्तमान समय में देवर और भाभी के पवित्र रिश्ते को निभाने में महती भूमिका निभाती है। आज जिस तरह से देवर और भाभी के रिश्ते कलकित हो रहे हैं उस रिश्ते की पवित्रता को बनाए रखने की कवायद करती है। इस संस्मरण में भाभी की भूमिका का चित्र जो उभरता है उसमें भारतीय नारी के श्लाघनीय और स्पृहणीय गुण विद्यमान है। 'शुण रसिया' संस्मरण में यह सब बड़े ही मनोहारी ढंग से देखने को मिलता है।

'चाँद खाँ' संस्मरण में 'चाँद खाँ का चरित्र-चित्रण जिस प्रकार से साहित्यकार ने किया है वह अपने आप में प्रभावोत्पादक एवं आकर्षक है। वास्तव में आज चाँद खाँ जैसे सच्चे नेक, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, जिम्मेदार और अदब-परस्त इंसान मिलना कठिन है। अगर 'चाँद खा' जैसे लोग अपने कर्तव्यपरायणता को समझते तो यह देश-समाज खुशहाली का जीवन व्यतीत करता। कुछ इसी तरह की दास्तान बयान करती है यह संस्मरण।

पंडित जी लेखक शैशव काल से सम्बन्धित संस्मरण है। इसमें उसके पढ़ाई प्रारंभ से लेकर कक्षा पाँच तक उत्तीर्ण होने तक की स्मृतियाँ चित्रित है। इस संस्मरण में गुरू की महत्ता पर बल दिया गया है। वास्तव में जो एक सच्चे गुरु का आदर्श व्यक्तित्व होता है। गुरु ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माणकर्ता होता है। गुरू गोरखनाथ जी ने कहा है कि 'गुरु बिनु ज्ञान, ज्ञान

पाइला न रे भाइला''। गुरु की कठोरता उसके शिष्य के व्यक्तित्व को विकासरत करने का अचूक हथियार होता है जिसे वह प्रेम रूपी मांसल कोमलता से सिंचित कर पल्लवित एवं पुष्पित करता है। वह जानता है कि मेरा एक गलत कदम शिष्य का जीवन तबाह कर सकता है। यह संस्मरण गुरु महत्ता, गुरु का कर्तव्य आदि को रेखांकित करती है।

लेखक ने लिखा है-'उनका जैसा व्यक्तित्व, उनका जैसा परिश्रमी, उनका संयमी मिल पाना अत्यंत दुर्लभ है। वे बाहर से कठोर और क्रोधी जरूर थें किन्तु हृदय में हित-भावना ही थी।'' पृ. 16

'मुंशी जी' संस्मरण में लेखक ने अपने जूनियर कक्षा के शिक्षक श्री रघुनाथ प्रसाद सिंह के व्यक्तित्व उनकी कार्यकुशलता, व्यावहारिकता तथा छात्रहित के प्रति सतत चिंतनशीलता का चित्र रेखांकित किया है। लेखक ने अपने बालपन एवं किशोरपन के अल्हड़ता, नटखटपनता के मनोभावों का सुंदर चित्रण किया है। इस संस्मरण में आंचलिकता परिवेश सन्निहित है। लेखक ने लिखा है ''का करैं का है ज्यादा पढ़ा कै।'' अबै तौ यो छोटै है हुन उत्ती दूर पैदल कइसै भई-जई। 'चिट्ठी-चपाती लिखै लायेक हुइगा है।'' रामायन बाँचै लेते है अउर का करिहौं पढाकै।' पृ. 17 इस संस्मरणों में व्यक्ति अपने भूतकाल के यादों में खो जाने को आत्मविभोर हो जाता है।

'स्मृतियों के घेरे में' संस्मरण बहुत ही मार्मिक है। श्रीमती गीतारानी 'गीता कला संगम' के माध्यम से कवि, लेखकों को पुरस्कार वितरण का दृश्य स्वाभाविक ही आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' पत्रिका की याद दिला देती है। जो उन्हीं की तरह से एक सच्चे साहित्यसेवी थीं।

साहित्याकाश के जगमगाते नक्षत्र 'संस्मरण' गीतकार श्री राम बहादुर सिंह भदौरिया के सौम्यशील, सुमधुर, सहृदयी साधक और कलाओं के धनी, व्यक्तित्व का अंकन हुआ है। 'कुछ यादें, कुछ बातें' संस्मरण में बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी डॉ. रामाश्रय 'सविता' जिनके मार्गदर्शन से कितने ही साहित्य प्रेमियों, साहित्यिक लेखकों को एक नया आयाम मिला जिनकी प्रतिष्ठा ने साहित्यकारों को प्रतिष्ठित किया। ऐसा डॉ. सविता जी का व्यक्तित्व था।

'प्रेरक गीत मनीषी' संस्मरण वरेण्य गीतकार श्री नीलम श्रीवास्तव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आधारित है। संस्मरण लेखक उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित है। नीमा जी की संघर्षता का चित्रण उनके गीतों में सहज रूप से देखने को मिलती है-'हो चुके बेरीढ़ कब के हम, और कितना टूटना है राम।' ऐसे कवि देश-समाज और साहित्य के लिए हमेशा प्रेरणा के स्रोत रहेंगे।

'जाग तुझको दूर जाना' यह प्रेरणा भरा गीत कवयित्री महादेवी वर्मा जी का अमर गीत है। यह प्रेरणामयी पंक्ति महीयसी महादेवी वर्मा जी के द्वारा संस्मरणकार को उत्तर प्रदेश सचिवालय, हिन्दी परिषद् लखनऊ की एक कवि-गोष्ठी में प्रथम दर्शन पर मिला था। उस संगोष्ठी मेंसंस्मरणकार को सरस्वती-वंदना का पाठ करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। महादेवी वर्मा द्वारा अच्छे प्रस्तुतीकरण करने हेतु लेखककार को आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ। आशीर्वाद के रूप में संस्मरणकार को 'जाग तुझको दूर जाना' का 'अनमोल मंत्र' महीयसी जी द्वारा दिया गया जो आज डॉ. शिवभजन 'कमलेश' जी के ऊपर पूर्णरूपेण सत्य प्रतीत होती दिखायी पड़ती है।

अपनत्वबोध के धनी श्री दिवाकर पाण्डेय संस्मरण में लेखक को अपने मित्र श्याम नारायण श्रीवास्तव 'श्याम' जी द्वारा पाण्डेय जी से सुमधुर मिलन करवाया गया था। उसी समय डॉ. कमलेश के हृदय में श्री पाण्डेय जी का बहुआयामी व्यक्तित्व घर कर गयी

जो आज उनकी यादें स्मृति पटल पर बनी हुई है। 'परिचय से अंतरंगता तक' संस्मरण में संस्मरणकार की मुलाकात एक ऐसे व्यक्तित्व से होती है। जो बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे जो एक कुशल पत्रकार, साहित्यकार तथा सुयोग्य संपादक थे। त्रिपाठी जी उनका परिचय कुछ यूँ देते हैं - ''ये हैं डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल जो प्रवासी भारतीय के रूप में नार्वे में रहते हैं। नार्वेजियन हिन्दी-पत्रिकाके सम्पादक और अच्छे कवि हैं।''पाण्डेय जी से वह सुमधुर मिलन आज उनके मन को तरोताजा कर देती है। 'एक व्यक्तित्व ऐसा भी' संस्मरणात्मक रचना में डॉ. अम्बिका प्रसाद गुप्त के संघर्षमय, त्रासदी पूर्ण, जिजीविषा से भरी, कर्मयुक्त और काव्यमय व्यक्तित्व के प्रति सादर नमन तथा अभिनंदन किया गया है। 'यादो में बंधु' संस्मरण के अंतर्गत श्री वीरेन्द्र प्रकाश गुप्त 'अंशुमाली' के व्यक्तित्व उनके साहस, धैर्य एवं सामाजिक कर्मठता का वर्णन है। धर्म, कर्म, सृजन के साधक' संस्मरण में डॉ. गणेश दत्त सारस्वत के प्रति लेखक के प्रभावोंत्पादक उक्ति का वर्णन है।

'ऐसे थे दादा' संस्मरण में श्री जगत नारायण के स्मृति कोश यादों का सुन्दर विवेचन किया गया है। जो लेखक के मानस पटल पर पत्थर की लकीर की तरह आज भी बनी हुई है। 'एकांत साधक' संस्मरणात्मक लेख में महान विभूति मर्मज्ञ विद्वान, साहित्य के धनी पं. गंगारत्न की उपलब्धियों एवं लेखक से उनकी मुलाकातों का वर्णन है। पं. गंगारत्न का वरदहस्त हमेशा लेखक डॉ. शिवभजन 'कमलेश' जी के सिर पर रहा है। पं. गंगारत्न पाण्डेय जी ने लेखक को एक दिशा भक्तिपरक मुक्तक रचना द्वारा इस प्रकार देते हैं -

''माँ तेरा यह जगर-मगर संसार सलोना है।
यहीं बैठ कर पाप-ताप का मर्दन होना है।
भक्ति-प्रसाद ग्रहण कर जीवन धन्य करूँ तब फिर,
चरणामृत पी कर, चरणों के नीचे सोना है।''

इस प्रकार सिद्ध होता है कि शिवभजन 'कमलेश' जी एक कवि ही नहीं बल्कि एक कुशल गद्यकार भी है। जिनका संस्मरण कृति 'स्मृति-लोक' इसका उदाहरण है। डॉ. कमलेश हिन्दी साहित्य के एक स्थापित साहित्यकार एवं सशक्त हस्ताक्षर है। इनकी यह पुस्तक सूचनात्मक, यायावरी तथा आत्म चिंतन एवं मंथन का महासागर है जो पाठकों के हृदय के अत्यंत निकटतम संबंध को स्थापित करती है।

❋❋❋

## क्षितिज

**डॉ० अलका अग्रवाल**
**ऐसोसियेट प्रोफेसर चन्दौसी, उत्तर प्रदेश**
**मो० : 05921-252425**

दूर बहुत है क्षितिज जहाँ मुझे जाना है,
वक्त है कम और काम बहुत निपटाना है।
जज्बा है मन में, कुछ कर दिखाना है,
मंजिल दूर सही, हर हाल में पाना है।
बाधायें कितनी भी आयें
आगे ही बढ़ते जाना है।
आलोचना से क्या घबराना,
ये तो हर रोज का फसाना है।
न पा सकी वो क्षितिज 'अलमिका'
क्षितिज नया एक बनाना है।

❋❋❋

# तीन चित्र

ई० दीप्ति शर्मा
आगरा, उत्तर प्रदेश

## कैनवास के रंग

दीवार पर टँगे
कैनवास के रंगों को
धूल की परतें
हल्का कर देती हैं, पर
जिंदगी के कैनवास
पर चढ़े रंग
अनुभव की परतों से
दिन-प्रतिदिन
गहरे होते जाते हैं।

## पुरानी याद

पुरानी यादों के स्मृतिपात्र
भरे रहते हैं भावनाओं से
जिन पर कुछ मृत चित्र
जीवित प्रतीत होते हैं
और दीवार पर टँगी
संवेदनाओं को उद्वेलित करते
एक काल्पनिक चित्र
कैनवास पर उतर आते हैं।

## तुम और मैं

मैं बंदूक थामे सरहद पर खड़ा हूँ
और तुम वहाँ दरवाजे की चौखट पर
अनन्त को घूँघट से झाँकती।
वर्जित है उस कुएँ के पार तुम्हारा जाना
और मेरा सरहद के पार ... ।
उस चबूतरे के नीचे तुम नहीं उतर सकतीं
तुम्हें परंपराएँ रोके हुये हैं
और मुझे देशभक्ति का जज्बा
जो सरहद पार करते ही खत्म हो जाता है
और तुम मर्यादाहीन ।
बाबू जी कहते हैं...
मर्यादा में रहो,
अपनी हद में रहो
शायद ये घूँघट तुम्हारी मर्यादा है
और मेरी देशभक्ति की हद....सरहद तक.... ।

***

# डॉ. हरिवंशराय बच्चन की काव्य-मीमांसा

दयानंद जायसवाल
भागलपुर
मो० - 9931240303

समकालीन संदर्भो में मानव-मन के संवेगों को नया-नया रूप प्राप्त होता रहता है। यह सत्य है कि आज व्यक्ति के सुख-दुःख, राग-विराग की संदेवना आदिम काल के मानव की संवदेना की तरह प्रत्यक्ष, सीधी और आवेगात्मक नहीं है - उसमें बौद्धिक युग की बहुत सी जटिलताएँ आ गई हैं। आज यह एक विशिष्ट मानसिक स्थिति में अपने अनुकूल बिखरे हुए संवेगों से जुड़ती हैं। इसमें अनुभूति की सच्चाई, विशिष्टता, नवीन सौन्दर्य-बोध, बिम्ब-प्रतीक-उपमान-योजनाएँ होती हैं। इनके आलम्बन की विचित्रता आह्लाद प्रदान करता है। वह किसी को कचोटता नहीं, खुला सुख देता है।

वस्तुजगत के प्रति अत्यन्त भावनात्मक प्रतिक्रिया प्रकट करने वाले, कविताओं में भयंकर आत्म-संपृक्ति, सौन्दर्य, प्रेम, उत्तेजना, उल्लास और विषाद की अनुभूति करानेवाले डॉ० हरिवंशराय बच्चन ने निर्मम-भाव से अपनी जानी-पहचानी दुनिया को छोड़कर यथार्थ की नयी दुनिया में प्रवेश कर उसके अनुकूल भाषा की तलाश की। स्वयं को अंधेरे में प्रकाश की तरह जलाकर, फूल की तरह खिलाकर अपने को सार्थक तथा अपने द्वारा युग में मूल्यवान बनाने की आस्था बनाये रखो।

हिन्दी जगत के लोकप्रिय कवि हरिवंशराय 'बच्चन' की आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' -1969, 'नीड़ का निर्माण फिर' - 1970, 'बसेरे से दूर' - 1977, तथा 'दशद्वार से सोपान तक' - 1985 शीर्षकों से चार खण्डों में प्रकाशित हुई है। इन चारों खण्डों के अध्ययन से पाठक को रचनाकार की रचना-प्रक्रिया, भौतिक तथा मानसिक संघर्ष की तथ्यात्मक, किन्तु कलात्मक जानकारी प्राप्त होती है। इन्होंने समग्र जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को जीवन्त परिवेश में व्यक्त किया है। विषय या अनुभूति के अभिजात्य और भिन्न-भिन्न दृष्टियों या वादों से बने हुए उनके घेरों को तोड़कर व्यक्ति द्वारा भोगे जाते हुए जीवन के हर छोटे-बड़े सत्य को प्रतीकों और विम्बों के माध्यम से उभरने में ही इन्होंने कविता की सार्थकता समझी।

जीवन की विषमताओं को एक सामान्य अनुभूति के स्तर पर सुलझानेवाले सीधी और स्पष्ट अभिव्यक्ति का विकसित रूप 'बच्चन' ने अपने काव्य में दर्शाया है। गिरजाघरों, मस्ज़िदों तथा देवालयों में प्रार्थनाओं एवं पवित्र मंत्रों द्वारा उस परमसत्ता का यशोगान करना ही एकमात्र रास्ता नहीं, बल्कि मानवीय ज्ञान, कर्म और उपासना सब एक ऐसे प्रेम का आगार हैं जिसमें अनन्तता, अक्षयता और निरपेक्षता निहित है और इसी में प्रेम के सभी रूपों का समावेश भी है। इनके आध्यात्मिक प्रणय में वह दीनता नहीं जो प्राचीन भक्तिकाव्य में है और न ही लौकिक प्रणय में रीतिकालीन विलासिता ही। कवि भले ही जीवन के संघर्ष से क्षुब्ध होकर निराशावाद में निमग्न हो जाते हैं और इस दुखमय संसार को भुलाने के लिए वे मदिरा का आश्रय लेते हैं-

''कटु जीवन में मधुपान करो,
जग के रोदन में गान करो,
मादकता का सम्मान करो-
यह पाठ पढ़ाने वाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ।

जहाँ ये 'मधुशाला' में पूरी तरह भींगे हुए दिखाई देते हैं, वहाँ भी इन्हें यह ज्ञान रहा है कि मधुशाला धार्मिक-साम्प्रदायिक अन्तराल को दूर कर अनुभूति के धरातल पर-''चाहे वह अनुभूति कर्महीन मस्ती की ही क्यों न हो''- एकता की स्थापना करती है।

कवि का हृदय जैसे नीड़ में सुप्त पक्षी की तरह अज्ञात स्वर्ण-रश्मि के स्पर्श से जगकर, एक अनिर्वचनीय-आकूलता से सहसा अपने स्वर्ग की संपूर्ण स्वतंत्रता में, एक रहस्य पूर्ण संगीत के स्रोत में उमड़कर कूक उठा है।

मदिरा पीने को घर से
चलता है पीनेवाला
किस पथ से जाएँ असमंजस में वह भोला-भाला
अलग-अलग पथ बतलाते सब
पर मैं यह बतलाता हूँ
राह पकड़ तू एक चला चल
पा जाएगा मधुशाला।

इनके मधुशाला, मधुवाला और मधुकलश काव्य-संग्रहों में उमर ख़ैयाम की रूबाइयों का प्रभाव लक्षित होता है। किन्तु, मधुशाला में डूबा हुआ यह कवि सामाजिक विषमता से अनजान नहीं हैं। उसने एक ओर तो उद्धाम यौवन की लालसा को अपनाया है, वहीं दूसरी ओर उसी स्तर पर सामाजिक संवेदना को भी मुखर करने का प्रयास किया है। इनकी कविताएँ प्रेम और मस्ती के भावों से प्रभावित होते हुए भी प्रणय के उच्छवास में लड़खराती नहीं तथा प्रणय के अतिरिक्त करूणा और हालावाद की अभिव्यक्ति भी मिलती है।

इनकी भाषा-शैली सरल होते हुए भी कहीं-कहीं छायावादी वक्रता की अदा दिखा जाती है। इनकी कविताओं में कोमल भावों की अनुभूति भी आवेशमयी और ओजपूर्ण हो उठी है। चित्र-भाषा की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर छलक पड़ी है। भाव अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित होने लगता है। यही भाव-झंकार संगीत बनकर विद्युत-धारा की तरह रोम-रोम में प्रवाहित हो सके जिनका मादक रस मदिरा की फेन-राशि की तरह अपने प्याले से बाहर छलक कर मधु की तरह टपकने लगे, ऐसी व्यापक परिकल्पना काव्य का सर्वोच्च वैशिष्ट्य है -

''वह मादकता ही क्या जिसमें
बाकी रह जाय जग का भय''

प्रणय का यह रूप छायावादी उदात्त प्रेम-भावना और अर्वाचीन नयी कविता की यौन-भावना के बीच की कड़ी है। यद्यपि प्रणय के कवि शारीरिक प्रेम के महत्व को स्वीकार करते हुए कहीं-कहीं जीवन की नैतिक मर्यादाओं की सीमा को ध्यान में नहीं रख पाए हैं, किन्तु मुक्त-निर्बन्ध भोग के समर्थक या प्रचारक ये नहीं हैं। दरअसल इनकी कविता भी उसी युग की उपज है जिसने छायावाद को जन्म दिया। छायावादी कवियों ने भी नैतिकता के बोझ से आक्रान्त प्रणय को मुक्त करने का प्रयास किया, किन्तु वे उसे पूरी तरह मुक्त न कर सके और उनकी प्रणय-भावना आध्यात्मिकता से संपृक्त हो गयी।

पुरातन एवं आधुनिक आध्यात्म मानव संस्कृति को दो विभिन्न दिशाओं में ले जानेवालो पथ हैं, लेकिन कवि का जीवन दर्शन मानव संस्कृति के उत्थान की श्रृंखला की दोनों कड़ियों को अलग-न कर जोड़ती ही है। मानव के अंतर में अवस्थित एक अलौकिक सनातन और अक्षय आत्मा की कोई वैज्ञानिक परिभाषा या कोई प्रमाण नहीं। आत्मा और परमात्मा मानव की बौद्धिक जिज्ञासा की दो विधाएं हैं, दार्शनिक शब्दजाल हैं। भौतिक जीवन का सर्वथा त्याग कर देना यथार्थ जीवन की अवहेलना करना है

''साकी बनकर मुरली आई
साथ लिए कर में प्याला
जिनमें वह छलकाती आई
अधर-सुधा-रस की हाला;
योगिराज कर संगत उसकी
नटवर नागर कहलाए;
देखो कैसों-कैसों को है
नाव नचाती मधुशाला।''

यथार्थ और गोचर विश्व की रंगीनियों को छोड़कर इसके मधुरस के आस्वादन से वंचित रहकर गगन में व्याप्त कुहेलिका

के पीछे भागना एक प्रकार का पलायन है। मानव अपना मोक्ष, निर्वाण या स्वर्ग का साम्राज्य इसी विश्व की रंगीनियों में पा सकता है; सोम रस की निर्झरणी का स्रोत क्षितिज के पार गगनांचल की अनन्त नील घाटी में नहीं, अपितु इसी धरती के रेणु-कणों में पा सकता है। परमात्मा की सृष्टि के कण-कण में सौन्दर्य और आनन्द की अजस्र-निर्झरणी प्रवाहित है। जरूरत है अपने कर्म, बुद्धि, विवेक, चिन्तन, अभिलाषा और आतुरता की। तभी आप पा सकते हैं - 'मधुशाला', 'मघुघट' और अनुभूति कर सकते हैं उस आभासित मदिरा की -

''मदिरा पाने की अभिलाषा ही बन जाये जब हाला
अधरों की आतुरता में ही जब आभासित हो प्याला,
बने ध्यान ही करते-करते जब साकी साकार, सखे,
रहे न हाला, प्याला, साकी, तुझे मिलेगी मधुशाला।''

और भी -

''जितनी दिल की गहरायी हो उतना गहरा है प्याला;
जितनी मन की मादकता हो उतनी मादक है हाला;
जितनी उर की भावुकता हो उतना सुन्दर साकी है,
जितना ही जो रसिक, उसे है उतनी रसमय मधुशाला''।

प्रणय के इन कवियों ने द्विवेदीयुगीन नैतिकता के कठोर बंधनों के प्रति विद्रोह किया। लौकिक स्तर पर प्रणय की तीव्रता की स्वीकृति का एक परिणाम यह हुआ कि प्रणय के साथ-साथ कविता में मादकता, शराब, साक़ी, मयखाने आदि का भरपूर वर्णन होने लगा। खास तौर पर यह प्रवृत्ति इनकी 'मधुशाला' आदि कृतियों में पूरी शक्ति के साथ दिखाई देती है। प्रणय और मदिरा का नशा, साकी और मयखाने का यह वर्णन व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना की अभिव्यक्ति है। कवि न तो संसार से डरता है और नहीं कोई लोकोत्तर आध्यात्मिक शक्ति उसे आतंकित करने में समर्थ है। इस प्रकार इनमें व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ की अधिक सशक्त अभिव्यक्ति दिखाई देती है -

''बहुतों के सिर चार दिनों तक चढ़कर उतर गई हाला,
बहुतों के हाथों में दो दिन छलक-छलक रीता प्याला
पर बढ़ती तासीर सुरा की साथ समय के, इससे ही
और पुरानी होकर मेरी।
और नशीली मधुशाला''।

स्वाधीनता का आन्दोलन जैसे-जैसे बल पकड़ता जा रहा था, वैसे ही वैसे ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का दमनचक्र और उसका आतंक बढ़ता जा रहा था। इसलिए जो कवि खुलकर दमन चक और आतंक का सामना नहीं कर सके वे आत्मकेन्द्रित होकर प्रणय की गीत गाने लगे। यह उनके व्यक्तिव की दुर्बलता का संकेत हो सकता है। किन्तु, काव्य अपनी अन्तरंग शक्ति से नये स्तरों और सोपानों की ओर बढ़ता है। प्रणय के इस काव्य में छायावादी प्रणय का नया सौपान दिखाई देता है, जहाँ प्रणय के रूप में ही सांसारिक रूप में स्वीकार करने का आग्रह स्पष्टतः व्यंजित है। इस विशेषता को यथार्थवादी दृष्टि से विकास के रूप में देखा जा सकता हैं इनकी अभिव्यञ्जना-पद्धति भी इस विकास की साक्षी है। इनकी कविताएँ सीधी-सरल पदावली द्वारा जीवन की नित्य अनुभूतियों को व्यक्त करने का प्रयास करती हैं।

डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' में साहस के साथ सीधे साफ तौर पर अपनी निजी प्रेम-संवेग तथा सुख-दुख को कहने की आकुलता है। इनकी वेदना निजी प्रतीत होती है। प्रेम किसी लौकिक सौन्दर्य-आलम्बन पर ठहरा होने के कारण अधिक मूर्त रूप धारण करता है। इनका हर्ष-विषाद न तो आदर्श का छल ओढ़ता है और न धरती-आकाश के बीच झुकता है, वह शुद्ध धरती के परिवेश के बीच धरती पर यात्रा करता है। यदि 'बच्चन' जी के 'निशा निमंत्रण' और 'एकांत संगीत' काव्य प्रेम के अवसाद के धनत्व को मुखर करते हैं, तो 'मिलन यामिनी' मिलन की मादकता और उमंग को। इनकी स्वच्छन्द वृत्ति सौन्दर्य और प्रेम की भूख लिए उड़ती थी। पर, वह भूख तृप्त नहीं हो पाती थी, स्वच्छन्द उड़ान सामाजिक इतिबन्धनों से टकराती थी और टूटकर विरह की पीड़ा बन जाती थी। फिर क्या था? उस विरह वेदना के धुन्ध में ईश्वरत्व के प्रकाश को ढूंढने लगते थे, इनकी शक्तिमान

विश्वस्त प्रसन्नता अगाध होने लगती और ये उस गहरी अनुभूतियों में सम्पूर्णता का क्षण मिलन यामिनी में भी अनुभव करने लगते-

''जो भेंट चला था मैं लेकर हाथों में कब की कुम्हलाई,
नयनों ने सींचा उसे बहुत लेकिन वह फिर भी मुरझाई,
तब से पथ-पुष्पों से निर्मित कितनी मालाएँ सूख चुकीं,
जिस मग से मैं आया उस पर पाओगे बिखरी-बिखराई ;

कुम्हला न सकी, मुरझा न सकी
लेकिन अर्चन की अभिलाषा,
मैं चुनता हूँ हर फूल अटल विश्वास लिए,
ये पूज न पायें प्रेय चरण लेकिन दुनिया
इनकी श्रद्धा को एक समय पूजेगी ही।
मैं रखता हूँ हर पांव सुदृढ़ विश्वास लिए,
ऊबड़-खाबड़ तम की ठोकर खाते-खाते,
इनसे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही।'

- मिलन यामिनी

एक बड़ा ही अजीव दृश्य है कि ऐसी सुन्दरतम अनुभूतियाँ जिन्हें मनोविज्ञान के पारखी कवि बच्चन जी खोज-खोज कर सामने रखते हैं। वह जीवन जगत के विम्बों, प्रेरणापूर्ण दृश्यों, भाव, विचारधाराओं के सार-सत्यों को पीते हैं, पीते रहना चाहते हैं, पीकर उसकी मादकता को आत्मसात करना चाहते हैं और उत्पन्न मानव दुःख से दूर पूर्णता की संभावना तलाशते हैं। कवि बच्चन यह भी अनुभव करते हैं कि संसार को ये गान वासना के गान लग रहे हैं, इसलिए उसे स्वीकार्य नहीं है। किन्तु कवि इन्हें अपने अनुभव का गान मानते हैं। इस अनुभव सत्य को वह स्वच्छन्द हृदय सहज भाव से गाना चाहता है। बच्चन जी ने अपने और समाज के इस तनाव को स्पष्ट अनुभव करते हुए मधुकलश में कहा है -

''कह रहा जग वासनामय हो रहा उदगार मेरा।
वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी।''
''शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा।''

कवि अपने काव्य में वासनाओं का निरूपण करना ही अपना कर्त्तव्य समझता तो वह घृणित और त्याज्य होता, परन्तु ऐसा नहीं है। इनकी रचनाएँ तो रसास्वादन द्वारा मानव को आनन्दित करती हैं तथा विषय-वासनाओं के गर्त से निकाल कर उन्मुक्त-भाव क्षेत्र में ले जाती हैं। चैतन्य ज्योति के मौलिक तथा सार्वभौम रूप को विभिन्न अधिकरणों में ढालकर उसका चित्रण करना ही काव्य का मूलभूत उद्देश्य है। हृदय के सभी प्रकार के भाव काव्य की रागात्मक अभिव्यंजना पद्धति से सजाये जाते हैं और अपने चर्मोत्कर्ष में आनन्द की अनुभूति कराते हैं। इसलिए इनकी सूक्ष्मता सौन्दर्य-अनुभूति वस्तुगत नहीं, प्रत्युत सहृदय की संवदेना है।

कवि का हृदय केवल हृदय ही नहीं हैं, उसकी हृदय-गोद में त्रिकाल और त्रिभुवन सोते हैं, सृष्टि दुधमुँही बच्ची के समान क्रीडा करती है और प्रलय नटखट बालक के समान उत्पात मचाता है। उसके हृदय-गगन के गान, समीरण के हास और सागर के रूदन से प्रतिध्वनित हुआ करता है। इनकी अभिलाषा में आनन्द ही नहीं, आत्मसमर्पण भी है। इनकी मदिरा जिसे पीकर भविष्य के भय और भूत के दारूण दुःख दूर हो जाते हैं, जिसे पान कर मान-अपमानों का ध्यान नहीं रह जाता और गौरव का गर्व लुप्त हो जाता है, जिसकी मादकता में मानव अपने जीवन की व्यथा, पीड़ा, संकट और संताप सभी मूल जाते हैं।

''उतर नशा जब उसका जाता, आती है संध्या बाला,
बड़ी पुरानी, बड़ी नशीली नित्य ढला जाती हाला;
जीवन के संताप शोक सब इसको पीकर मिट जाते;
सुरा-सुप्त होते मद लोभी जागृत रहती मधुशाला।''

जीवन की मदिरा जो बहुत कड़वी होती है - इसका पान किया जाय तो जीवन की दुखदायिनी चेतना को विस्मृति के गर्त से प्रबल दैव, दुर्दम काल, निर्मम कर्म और निर्दय नियति के क्रूर, कठोर, कुटिल आघातों से रक्षा करेगी। यह कवि की मदिरा है जो हृदय कल मधु का प्यासा था, वही आज प्यास बुझानेवाला मधु हो गया है। प्रकृति मधुशाला बनकर झूम रही है। आज

हाला-प्याला-मधुशाला-मय आभासित हो रही है। कवि अपने समस्त विश्व-प्रिय को इसी हाला से परिप्लावित करते हैं -

"वह हाला, कर शांत सके जो
मेरे अन्तर की ज्वाला,
जिसमें मैं विंबित-प्रतिविंबित
प्रतिपल, वह मेरा प्याला,
मधुशाला वह नहीं, जहाँ पर
मदिरा बेची जाती है,
भेंट जहाँ मस्ती की मिलती
मेरी तो वह मधुशाला है।"

कवि अपने अनुभवों से परिचालित हो रहे हैं। उनके अनुभव भावुक हृदय के अनुभव हैं। ये व्यक्ति को सामाजिक शक्ति एवं आध्यात्मिक आदर्शों से जोड़ने का भरसक प्रसास करते हैं। कवि के साथ ईश्वर नहीं है, देवता नहीं है, रूढ़ समाज नहीं है, संस्था नहीं है, इसलिए वह किसी प्रकार के आश्रय का आभास नहीं कर पाता, उसे यदि कोई सहारा नजर जाता है तो केवल प्रेयसी से मिलन का। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, माघ और श्रीहर्ष आदि विपुल एवं समृद्ध साहित्यकारों ने भी ऐसा ही अप्रतिम प्रेम का अनुभव और विस्तृत वर्णन किया है। आदिकाल में विद्यापति, भक्तिकाल में सूफी काव्य, सूरदास, रीतिकाल में घनानन्द जैसे कवियों ने भी प्रेम का सरस वर्णन किया है। इन्होंने भी तो सिर्फ शब्दों के चिरालिंगन पाश में बाँधकर हृदय-कुञ्ज में छुपी हुई भावना को आनन्द के उद्रेक से वाणी को सजाकर भाव की अभिव्यक्ति कल्पना के विशेष बहाव में संगृहीत किया है।

अपने अनुभव-यात्रा में इन्होंने देखा जीवन क्षणभंगुर है; इस अवसाद के विस्तार में यदि उल्लासके कुछ क्षण मिल जाते हैं तो उसे मस्ती से भोग करना चाहिए। ये प्रेम या उल्लास की उत्तेजना को तीव्र करने के लिए मधु का पान करना चाहते हैं। यह मधु धीरे-धीरे इतना आत्मीय हो जाता है कि वह जीवन-सत्यों का प्रतीक बन जाता है।

"पितृ पक्ष में पुत्र, उठाना अर्घ्य न कर में, पर प्याला,
बैठ कहीं पर जाना गंगा-सागर में भरकर हाला;
किसी जगह की मिट्टी भीगे, तृप्ति मुझे मिल जाएगी
तर्पण अर्पण करना मुझको पढ़-पढ़ के मधुशाला।"

अपनी कविताओं में अभिव्यक्तिमूलक सादगी ही इनकी एक बहुत बड़ी देन है। ये सीधे-सादे शब्दों में, परिचित चित्रों में और सहज कथन-भंगिमा के द्वारा अपनी बात बड़ी सफाई से कह देते हैं तथा ये प्रगतिवादिता, रहस्यात्मकता, रसात्मकता, उर्दू के प्रति आस्था एवं संस्कृतनिष्ठता का भी भरपूर लाभ उठाये हैं। प्रकृति-चित्र-विम्ब और उपमा भी काव्य कृतियों में लक्षित है। प्रेम, सौन्दर्य और तज्जन्य निराशा, विषाद, टुटन तथा उन्माद-हर्ष के अनुभवों की लौकिकता का रूप भी इनकी कृतियों में देखने को मिलते हैं। भाषा सरल, मधुर और सबके हृदय को झंकृत करनेवाली है।

भाषा और भाव जब दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए बेकरार होते हैं, तभी साहित्य में ऐसी अनमोल कविताएँ गढ़ी जाती हैं। सच पूछिए तो यह वह अवस्था है जब जिन्दगी की धारा को बदलनेवाले कवि के भीतर नबी या पैगम्बर की मुद्रा प्रकट होती है। इनकी कविताओं में सत्य एक अनन्त शक्ति के रूप में आता है। कल्पना का सत्य से कोई विरोध नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो सत्य की ही एक रंगीन झलक-भर है। असल में, वही कविता सफल होती है जो सत्य की इस अनन्तता की झाँकी हमें सौन्दर्य में लपेट कर दिखला सके।

कवि का मन गतिमान जीवन की पूर्णता को उसकी लय में दर्शन करता है। वस्तुओं के चमत्कारी यंत्र का नहीं, उनमें छुपी हुई आत्मा के ग्राहक हैं।

# सत्य का आत्मविश्लेषण

शशांक शुक्ल
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

कविता

सत्य को सत्य-सा,
प्रकाश को प्रकाश-सा,
मिला कोई तो लगता है
मन है कुछ उदास-सा।

अपने महत्व की खोज में
सत्य को सत्य मिले तो
मान तो घट ही जाता है
बचता है कुछ प्यास-सा।

महत्व अपना खोकर
सत्य खुश तो नहीं हुआ
मन मसोसकर पड़ा है
जो हुआ, चलो सही हुआ।

मुझसे उत्कृष्ट है कहीं
जिसका अब उद्भव हुआ
लगता है इसको ही
कहते हैं कुछ विकास-सा।

समक्ष जब अनृत ही था
मान सबने मुझे ही दिया
वहाँ स्वयंसिद्ध उच्चता में
विनम्र होकर के रह लिया।

अब श्रेष्ठ सम्मुख है तो
विनम्रता नैसर्गिक नहीं है
सहज ही विनम्र रहने को
करना पड़ेगा कुछ प्रयास-सा।

मुझे छोड़, अपनाना इसको
यह नया एक दौर होगा,

मैं मिटूँगा, मै हटूँगा,
कोई नया सिरमौर होगा।
उपेक्षित होना किसी मोड़ पर

यह भी तो एक प्रक्रिया है
बनकर रहूँगा फिर वही
जिसको कहते हैं इतिहास-सा।

पर कभी जब बात होगी
यहाँ तक कैसे आये
मेरा भी प्रसंग उठेगा
इसने नये मार्ग बनाये।

मेरा जो भी योगदान है
वह होगा स्मृतियों में
मैं सतत् जीवित हो उठूँगा
है मुझको कुछ विश्वास-सा।

❋❋❋

# डॉ० मिथिलेश दीक्षित की क्षणिकाओं के जीवन्त पक्ष

डॉ०ज्वाला प्रसाद कौशिक 'साधक'
मेरठ, उत्तर प्रदेश

साहित्य अनुभूत यथार्थ की संवेदनाजन्य साकारात्मक अभिव्यक्ति है, समाज का हितसाधक तथा जीवन - मूल्यों का पोषक होता है। विभिन्न साहित्य-मनीषियों ने साहित्यधर्मिता को अपनी-अपनी दृष्टि से परिभाषित किया है, जिसमें समाजहितैषिता उल्लंघन की परिधि का उल्लंधन नहीं हुआ है। प्रसिद्ध समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है, परन्तु साहित्य केवल दर्पण ही नहीं, समाज की आँख और कान भी है क्योंकि साहित्य साहित्कार की दृष्टि भी है और सृष्टि भी। वस्तुतः वह रचनाकार के चिन्तन-मन्थन का सत्यपरक परिणाम है।

साहित्य की अनेक विधाओं में, काव्य सर्वोपरि है। काव्य ही साहित्य का मूलस्रोत है, संवेदना उसकी कारयित्री शक्ति है, जिसके आश्रय में सभी साहित्यिक विधाएँ जन्म लेतीं और पलतीं हैं। संवेदना और भाव अविभाज्य और एक-दूसरे के पूरक है तथा व्यष्टिगत-समष्टिगत चेतना से अनुप्राणित-संचालित रूप-लय में सर्जना का आधार ग्रहण करते हैं। श्रेष्ठ काव्य उच्च चेतना का ही प्रतिफलन है। कविता अपने भाव-रूप-स्वरूप की सम्प्रेषणीयता से पाठकों और श्रोताओं तक पहुँचने का सशक्त माध्यम है। कालक्रम के प्रवाह में कविता ने रूप-शैली में विविधता ग्रहण की और गीत, मुक्तक दोहा-चौपाई, गजल, नवगीत, क्षणिकाओं ने अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर काव्य विधा को समृद्ध किया। काव्य में साट बयानी का स्थान नहीं है। लेखक के स्वयं के एक दोहे की पंक्ति, 'घूँघट में वह बोलती, तिर्यक् नयन उधार' से यह बात स्पष्ट हो जाती है। कविता तो लक्षणा-व्यंजना के आश्रय में पलती और सुघड़ती है, अभिधा में नहीं।

'क्षणिका भावोद्रेक की क्षणिक अभिव्यक्ति है, जो छन्दमुक्त भी हो सकती है, छन्दोबद्ध भी तथा भाव-विचार को पाठक के चिन्तन के धरातल पर पहुँचाकर, सहजता से सम्प्रेषित कर सकती है। क्षणिका यद्यपि शास्त्रीय शिल्प और छान्दसिक बन्धनों से मुक्त होती है, परन्तु यदि उसमें लयात्मकता और लय-गति का सम्यक् निर्वाह हुआ है तो सोने में सुहागा की भाँति सर्जक क्षणिका को श्रेष्ठता से मंडित कर देता है।

क्षणिका-सृजन का इतिहास पुराना होकर भी नया है, क्योंकि हिन्दी काव्य में आज की क्षणिक पुरातन सूत्रात्मक उक्तियों का विकसित रूप है, जिसमें व्यंजना अधिक प्रभावी होकर उभरती है। क्षणिकाकारों की संख्या भी अत्यल्प है, क्योंकि क्षणिका-सृजन तीव्र और गहन संवेदना के धरातल से अभिव्यक्त होता है, जिसमें लघुता और संक्षिप्तता होती है। इसीलिए चिन्तनशील सहृय रचनाकार ही इस विधा में सफलता की पीठिका पर सुशोभित हो पाते हैं। यह विधा उस सर्जक में स्वतः उद्घाटित होती है, जिसने यथार्थ को उत्कट एवं गहन रूप से अनुभूत किया है, जिसे वह किसी अन्य पर आरोपित न कर, स्वानुभूत सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए विवश हो गया है। रचनाकार स्वयं भी साक्ष्य के रूप में परोक्ष में विद्यमान रहता है।

काव्य में क्षणिकाओं के सृजन का प्रसाद गिने-चुने प्रतिम कवियों को ही प्राप्त हुआ है। उनमें प्रख्यात कवयित्री विदुषी डॉ०मिथिलेश दीक्षित का नाम अग्रगण्य है। आप शोध निबन्ध, समीक्षा, पत्रकारिता, सम्पादन, सृजन के क्षेत्रों में ख्यातिनाम हैं और आपकी इन विधाओं के अतिरिक्त केवल काव्य की ही दो दर्जन पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं। क्षणिकाओं में आपकी सृजित और सम्पादित अनेक पुस्तकें प्रकाशित है-'उगते सूरज का एहसास', 'धूप की तरह', 'उगती दूबः उभरते अक्षर', 'सिन्धु सीपी में' 'जले सुधि के दीप', 'एक स्वर और भी' आदि संकलन का अवलोकन अवगाहन कर मुझे अत्यंत प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है, क्योंकि इसका विस्तृत फलक अत्यन्त गहन और सूक्ष्म संवदेन तंतुओं से संग्रथित है। संकलन की क्षणिकाएँ इनमें सिन्ध ु सीपी में' क्षणिका अत्यन्त हृदयस्पर्शी एवं प्रभावपूर्ण हैं। लाक्षणिक सौन्दर्य प्रायः सभी क्षणिकाओं में मुखर है।

जैसा कि 'सिन्धु सीपी में' नाम से प्रतिभासित होता है, कवयित्री का चिन्तन-धरातल दार्शनिक और भौतिक दोनों पक्षों से समृद्ध है, उनकी प्रतिभा का परिचायक है। संकलन की प्रारंभिक दो क्षणिकाएँ हैं -

''एक अकेला/
नन्हा-सा अस्तित्व/
समय की तीव्र धार से लड़ता-लड़ता/
पार लगा है।''

तथा -

''सिन्धु सीपी में समाता/
निश्छल हृदय/
अगोचर विभु को कण में पाता।''

उपर्युक्त क्षणिकाएँ जीवन-जगत् के दार्शनिक पक्षों की उत्कृष्ट प्रस्तुति हैं निश्छल हृदय की प्रस्तुति अत्यन्त प्रभावी हो जाती है। महाकवि तुलसीदास ने इसी पक्ष को उजागर किया है-

'अस मानस-मानस चख चाहीं।
भइ कवि बुद्धि विमल अबगाहीं।''

सभी शास्त्र, पूजा-जप-तप हृदय की निश्छलता पर बल देते है। कवयित्री ईश्वर से भी प्रार्थना करती रही- ''हृदय निश्छल हो/प्रखर मेघा।'' कवयित्री का दृष्टिकोण आस्थापरक तथा समर्पण-भाव से परिपूरित है और सहज अभिव्यक्ति में समर्थ है। उत्कट विश्वास और दृढ़ संकल्प इस क्षणिका में अभिव्यक्त है-

''जब चाहूँगी/
विविध रूप में/
मैं आऊँगी
अपने अन्तस में/
प्रभु तुमको/
मैं पाऊँगी।''

समय की परिवर्तन शीलता में भी कवयित्री सहज ही संदेश देती है -

''मधुऋतु मुझको/
बता गयी है/
मुझे देखकर/
इठलाना मत पतझर में भी/
मुरझाना मत।''

विषय में विषम परिस्थितियों में भी अडिग रहना, समय की त्रासदी में निराशा-हताशा के दंशों से निष्प्रभावी होना जीवटता की पराकाष्ठा का उद्घोष है। ऐसी अभिव्यक्ति आत्मबल से संवलित व्यक्तित्व ही कर सकता है।

कवयित्री का उपालम्भ या आक्रोश भी सकारात्मक और सात्विक है। बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ के कार्यों में लगाने वाले निष्क्रिय, स्वार्थी लोगों को सचेत करती हुई क्षणिका है-

तोड़ डाली/
सृष्टि की नियमित व्यवस्था/
स्वार्थी बन
व्यर्थ ढोया उसने यह/
बहुमूल्य जीवन।''

एक स्थान पर आपने लिखा भी था-

''प्रकृति के मानकों पर जो खरे उतरे,
उन्होंने जी लिया जीवन नहीं बिखरे।''

उत्कृष्ट संवेदना का कोमल और निश्छल हृदय में सुप्त रहना सम्भव नहीं है। यह सृष्टि का शाश्वत नियम है। आपकी क्षणिकाओं में यह सहजता से अभिव्यक्त हुआ।

विदुषी कवयित्री का कोमल नारी-हृदय नारी के प्रति समाज की अवहेलना से आहत होकर कह उठता है -

जन्म दे/
जीवन सजाती/
घर से संसद तक चलाती फिर भी अबला/
आज के उत्कर्ष युग में भी, क्यों भला?

धार्मिक रूढ़ियों और विसंगतियों पर कवयित्री ने करारा प्रहार किया है -

'रटता रहता राम/
मन में रहता काम, नहीं मिलता इस मनुज को/
तनिक भी विश्राम।
पापों-जापों पर भी कटाक्ष प्रभावी है -
''दिन भार पाप/
सुबह-शाम जाप
धर्म परिभाषित/
अपने-आप।''
तथा-जीवन भर चलते/
तीरथ और जाप/
मिटते न पाप।''

पाप-पुण्य, धर्म-कर्म सभी व्यक्तिनिष्ठ होते जा रहे हैं। दिखावा, आडम्बर, रूढ़ियों ने समाज को बुरी तरह जकड़ रखा है। कवयित्री ने व्यंग्य द्वारा इनपर कटाक्ष किया है। जीवन-मूल्यों की साहित्य में भी बात करने वाली कवयित्री समन्वय पर बल देती है, क्योंकि प्रकृति के सभी पदार्थों में विरोध होते हुए भी पूर्ण समन्वय है। अग्नि-वायु-जल आदि विरोधी तत्वों में भी कितना समन्वय है, कि सम्पूर्ण सृष्टि, स्वयं मनुष्य भी पंचतात्विक अस्तित्व ग्रहण किये हुए है।

जीवन के समन्वय और लयात्मकता को, प्रकृति के माध्यम से सटीकरूप से अभिव्यक्त किया गया है -

रहे विरोधी/पर सहयोगी/
सभी अभय
इस वसुधा/
पूरी लय में/
पूर्ण समन्वय।''

कर्म और नियति का विश्लेशण इस क्षणिका में देखें-

'धर्म से पहले/
सुनिश्चित नियति/
पर नियति को मोड़ दे/
वह कर्म है।''

नारी-समाज की अतिभौतिकतावादी मानसिकता और आधुनिकता के नाम पर फैशनपरस्ती पर भी कतिपय क्षणिकाएँ प्रकाश डालती है। व्यंग्योक्ति का श्रेष्ठ नमूना है यह क्षणिका -

'दूध-सब्जी ससुर लाते/
सास वर्तन माँजती,
बहु उठती देर से/
पतिदेव से'टी' माँगती।''

संवादों के झमेलों को सुलझाते-सुलझाते जीवन बीत जाता है, परन्तु बहुत कुछ अनसुलझा रह जाता है -

''खड़ा हो गया सम्मुख मेरे/
सुधियों का संसार
समझ न पायी अब तक मैं/
उन संवादों का सार।''

कविता को भी क्षणिका द्वारा अत्यन्त सहजता से परिभाषित किया गया है -

सुन्दर/
सलीकेदार/दिल की बात है कविता/
जो दिल को छू सके।''

कवयित्री प्रकृति को रूपक बनाकर विकृति के विषय में भी कहती है -

''सारल्य/
सहजता/

समरसता लावण्य-मधुरता-तन्मयता, जड़ चेतन में परिव्याप्त हुई। वह प्रकृति नहीं, तो विकृति है।

उपर्युक्त क्षणिका में रहस्यवादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। संकलन की एक प्रमुख क्षणिका है -

''मैं नहीं नीरों भरी बदली/
मचलती धार में भी/
मैं नहीं मचली, समुन्दर को समेटा/
स्वयं सीपी में/
बनी जो बूँद,
उसने जिन्दगी की धार बदली।''

प्रस्तुत क्षणिका में कवयित्री के साहस ने वीरांगना की पृष्ठभूमि का आलम्बन किया है। इस साहस ने आदर्शों के सर्वत्र द्वार-खोल दिये है। प्रतीत होता है कि इसी अधारभूमि से संकलन का नामकरण हुआ है, जो सार्थकता के साथ जीवटता का भी निर्भीक ध्रुवतारा है। गूढार्थ में तो इस क्षणिका ने महीयसी महादेवी की स्मृति दिला दी है। मेरे विचार से यह क्षणिका इस संकलन की सवोत्कृष्ट क्षणिका है। इसी की धुरी पर, मानों सभी क्षणिकाओं की स्थिति है।

वस्तुतः संकलन की क्षणिकाओं के कथ्य एवं शिल्प पर अत्यन्त विस्तार में कहने की आवश्यकता है परन्तु एक लेख के लघुकलेवर में इसकी गुंजाइश नहीं है, अतः अन्तिम क्षणिका के बारे में कथनीय है कि यह अतीव मार्मिक और आस्थावान् हृदय की विशुद्ध चेतना-दृष्टि की परिचायक है मानव-चेतना को उच्चतम शिखर पर प्रतिष्ठित करने हेतु शाश्वत उद्घोष है -

हम नहीं होंगे/
हमारी अस्मिता होगी/
धरा होगी।
हमारी अक्षर की/
गूँजती वाणी परा होगी।''

संयोग से, रचनाकर्त्री के काव्य-संकलनों के नाम भी 'अस्मिता' और अक्षत हैं। इन क्षणिकाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि कवयित्री साहित्य में अनवरत सृजनशीलता की साहसी, संवेदनशील और प्रबुद्ध पथिक हैं, ऐसी ऊर्जावान साहित्य-साधिका हैं, जो माँ भारती के अक्षर-अक्षर भण्डार को समृद्ध करने में सतत चेष्टारत है। प्रस्तुत क्षणिका-संकलन मात्र साधारण स्तर का काव्य नहीं है, यह एक अनन्य उपन्यस्त काव्य-कृति है, जिसमें जीवन-जगत् और उसके नियन्ता के गूढ़ रहस्यों की खोज का भी प्रयास है। संकलन की रचनाओं में छायावादी-रहस्यवादी स्वर भी मुखरित हैं दार्शनिकता की दृष्टि से भी यह डॉ०दीक्षित की काव्य-प्रतिभा को प्रकाशित करनेवाला उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

❋❋❋

लघुकथा

# पत्थर की एक और अहिल्या

डॉ० अचल भारती
बांका, बिहार

कभी विश्वास ने एक मधुर कन्या के साथ अन्तर्जातीय विवाह करने का वादा किया था। वह इस इंतजार में बैठी रही कि विश्वास एकदिन उसे अवश्य स्वीकारेगा, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। एक दिन एक खबर उसके हाथ लगी कि विश्वास ने बिरादरी की ही एक अप्सरा को अपना लिया है। यह अशुभ समाचार उस कोमलांगी सहृदय कन्या को सालती, कचोटती, मथती हैं। प्रतिक्रियास्वरूप वह आखिरी चिट्ठी लिखती हुई अपने अंदर के सबकुछ को उगलकर अपना दिल रख देती है और बुद्धि के क्षेत्र में व्यंग्य विचार देती है-'शायद तुम्हारे हारने से तुम्हारे समाज में मर्द की परिभाषा को ठेस लगती थी और तुम वही मर्द होकर घिसी-पिटी परिभाषा के समक्ष एक और परिभाषा को स्वीकार नहीं कर सकते थे। यही तो होना था तुम्हारे इन्तजार में एक दिन। आखिरी चिट्ठी लिखकर तुम्हारी महानता पर तुम तक बधाई भेज रही हूँ। चिट्ठी के अंत में स्वयं 'पत्थर की एक और अहिल्या' का दर्द-भरा विशेषण ओढ़ लेती है।

यह कथा का सबसे अधिक संवेदनशील क्षेत्र है और इसके पीछे की सत्य-ध्वनि यह है कि पुरुष खुद से महानता को ओढ़ कर चलता है, किंतु बार-बार उसकी महानता कमजोर सिद्ध होती है और वह अनचाहे-मनचाहे किसी की भावना की हत्या कर जाता है, सजीव अहिल्या को भी वह पत्थर बना जाता है।

## संभाव्य-संदेश

सत्य स्वीकार नहीं करना किसी भी इंसान का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है।

गीत

# न नींद, न चैन

राज हीरामन
पेरेबेर, ग्राँबे, मॉरीशस
ई-मेल rajheeramun@gmail.com

जब से तुम रुख्सत हुई
अब नींद कहाँ से आती है
अब चैन कहाँ से आती है

नींद के लिए भागता-भटकता हूँ
पर नज़र नहीं आती है
अब नींद कहाँ से आती है ...

नींद तो आती है, जाती है
अब लोरी मुझे सुनाती है
अब नींद कहाँ से आती है ...

युग बीत गया कब सोया था

अब नींद मुझे सुलाती है
अब नींद कहाँ से आती है...

चिड़ियाँ गुनगुनाती-चहकती थी
वो अब गीत कहाँ गाती हैं
अब नींद कहाँ से आती है...

आँखें मेरी भर-भर आती हैं
तेरी पलकें याद आती हैं
अब नींद कहाँ से आती है...

चंचल मेरी आँखें रहती
आँखे कहाँ सुख पाती हैं
अब नींद कहाँ से आती है...

कभी यहाँ तो कभी कहाँ,
यादें तेरी भटकाती हैं
अब नींद कहाँ से आती है...

तुम्हारी छाया यहीं रहती है
पर आँखें मुझसे चुराती है

अब नींद कहाँ से आती है...
अब चैन कहाँ से आती है .....

## नववर्ष - 2014 की शुभकामनाओं के संग-

संभाव्य के प्रधान संपादक आदरणीय डॉ०शीतल अवस्थी ने अपनी लंबी अस्वस्थता के कारण पत्रकारिता जगत से अवकाश प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की है।

प्रधान संपादक के रूप में उनके अमूल्य योगदान के लिए संभाव्य परिवार आभार व्यक्त करता है तथा उनके स्वस्थ जीवन की मंगलकामना करता है।

दयानन्द जायसवाल
संस्थापक, संभाव्य

# ओंकारेश्वर से महाकालेश्वर तक

यात्रा-वृत्तांत

डॉ० अनुज प्रभात
फारबिसगंज, अररिया, बिहार
मो० : 9470023249

उज्जैन की यात्रा अनुभवों की यात्रा रही। बहुत कुछ देखने सुनने का अवसर मिला। खासकर इन्दौर से ओंकारेश्वर और इन्दौर से महाकालेश्वर का सफर अविस्मरणीय रहा। खट्टी-मीठी यादें तस्वीर बन अब भी आँखों के सामने उभर आती हैं।

सच तो यह है कि उज्जैन की यात्रा का कार्यक्रम बनाना मेरे लिए सहज नहीं था। मेरे साहित्यिक मित्र डॉ० सुधीर धरमपुरी को विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ ईशीपुर (भागलपुर) से विद्यासागर सारस्वत सम्मान मिलना था उज्जैन में होने वाले 17वें अधिवेशन में, परन्तु मैं स्वयं को जाने हेतु तैयार नहीं कर पा रहा था। वैसे आमंत्रण मुझे भी था भारतीय 'भाषा रत्न' सम्मान हेतु।

माह दिसम्बर..... कड़ाके की ठंढ.... ठंढ में सफर.. ओह! कांप सा गया था मैं... लेकिन धरमपुरी जी का स्नेह एक संरक्षक की तरह इस प्रकार था कि मेरी ना कहने की हिम्मत नहीं हो पा रही थी और फिर विश्वास के साथ बगैर पूछे रिजर्वेशन भी करवा दिया था। मैं विवश था इसलिए इस तर्क के साथ घर के सभी सदस्यों का सबों को चुप करा दिया कि समझो सरकार का विभागीय आदेश है.... कर्त्तव्य निर्वहन मेरी जबावदेही है .. बस सब चुप !

इसी तरह हमारी सफर आरंभ हुई। धरमपुरी जी के साथ उनका बड़ा पुत्र जय और जय का पुत्र बाबू साहेब ..... सभी तीन जन एक ही परिवार के .. और उस बीच स्टेपनी क्रॉप-सा मैं .....।

9 दिसम्बर, 2012 की रात्रि के 9 बजे थे। घना कोहरा, कड़ाके की ठंढ और गाड़ी सीमांचल एक्सप्रेस ... फारबिसगंज से खुली तो दिल्ली के लिए, किन्तु इस गाड़ी से हमारा सफर पटना तक रहा, फिर पटना से राजेन्द्र नगर टर्मिनल और वहाँ से इन्दौर जहाँ पड़ाव डालने की व्यवस्था हुई थी।

उज्जैन से गाड़ी खुलते हो छात्र-छात्राएँ आँधी-तूफान की तरह घुसते चले आए थे... हमें कुछ कहे बगैर अगल-बगल ऊपर जहाँ जैसे भी हो बैठ गये थे। मेरे बगल में बैठी थी तसनीम जो इन्दौर में सी०आई०ए० कर रही थी और धरमपुरी जी के बगल में बैठा था सुमन जो इन्दौर में इंजीनियरिंग कर रहा था। बातों ही बातों में जब उन्हें यह पता चला कि हमलोग साहित्यकार हैं तो झट बैग से एक कॉपी निकालकर ऑटोग्राफ के लिए आगे कर दिया। हमने ऑटोग्राफ दिया पर भूल नहीं पाए साहित्य के प्रति बच्चों के इस प्रेम को। मुझे याद है तसनीम ने 'तसनीम' का अर्थ 'जन्नत का पानी' बताया था। जब ऑटोग्राफ लेते वक्त कुछ लिखने को कहा तो मैंने लिखा -

"आखरी आरजू थी तसनीम नसीब हो जाये
मगर गुनहगार जो ठहरा, खुदा की ईबादत न किया।"

इस तरह हम बातों-बातों में जब इन्दौर स्टेशन पहुँचे तो विनोद बाबू स्वयं वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने स्वयं हाथों-हाथ सामान लिया और हम गाड़ी में बैठ गये। यहाँ एक बात उल्लेख करना चाहूँगा कि हम जिनके घर अतिथि बने थे, वे धरमपुरी जी के मामा थे, लेकिन उनके पुत्र जय के मित्र थे। धरमपुरी जी अपना धर्म मामा कहकर निभाते तो जय उनसे..रे..बे.. का बोल बोलते। कृष्ण के बाल सखा-सी हँसी-ठिठोली... विलक्षण रिश्ता गाँव-समाज सा... आज के भौतिकवादी युगमें भी।

इस यात्रा के क्रम में कई स्थलों से गुजरा.. सिमरौल, कजलीगढ़, कजलीधाम, सतपुरा आदि-आदि, लेकिन वक्त ठहरने का नहीं था। निर्णय हुआ वापसी में अवलोकन किया जायेगा।

हम ओंकारेश्वर पहुँचे। अति सुन्दर दृश्य। चारों ओर पहाड़, पहाड़ पर दूर-दूर तक अनेक मंदिर, जलप्रपात, नदी, नदी पर पुल.. मोहक.. सम्मोहित करनेवाला। हम इन दृश्यों का लुत्फ

उठाते.. कई सीढ़ियाँ उतरकर मामी जी के पीछे-पीछे नदी तट पर पहुँचे। वहाँ फूल वेलपत्र आदि बेचने वालों की कतारें.. लगी थी। मामी जी के साथ हम सभी एक फूल-बेलपत्र प्रसाद आदि बेचनेवाली के पास रुके, जूते उतारे और जलपात्र ले नदी में गये। वहाँ से जल लेकर उसी से पूजन सामग्री ले सीधे मंदिर आये। मंदिर में लम्बी कतारें... पुरुष महिला की अलग-अलग। हमलोग भी अपनी-अपनी कतार में लग गये। वहाँ पहुँचते ही मेरा जल पात्र वाला जो हाथ उठा था भीड़ में बचाने के लिए वह पंडितजी की ओर बढ़ गया। पंडित जी ने जलाभिषेक कर वह पात्र वापस कर दिया। अभी उसमें थोड़ा जल था जिसे मैंने उस पात्र में उढेल दिया। पर वह क्षण अद्‌भुत था जो माध्यम से ही सही, सीधे उनतक पहुँचा, मेरी पूजा पूर्ण हुई।

मुझे वह देखना था जो कविवर भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी कविता में वर्णन किया था सतपुरा के घने जंगल के बारे में -

''सतपुरा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से
ऊँघते अनमने जंगल।''

इसलिए इच्छा करते हुए संजय को याद दियाला। संजय ने बताया कि उसे सब याद है। आपको सभी स्थलों का दिग्दर्शन करा दूँगा। संजय के दिग्दर्शन, शब्द और उसके बोलने के लहजे पर मैं मुस्कुराये बिना नहीं रहा। फिर जब गाड़ी रुकी तो हम सतपुरा में थे। हमने उतर कर थोड़ा भीतर जाने का रास्ता तलाशना शुरु किया, लेकिन कोई रास्ता नजर नहीं आया। पूछने पर लोगों ने बताया हाईवे बन जाने के कारण अब इधर से रास्ता नहीं है। रास्ता दूसरी ओर से है और अब केवल फौजी लोग ही जा सकते हैं। थोड़ी दूर पर एक पुल है जिसके बगल से सीढ़िया रास्ता तो है लेकिन वह नदी तक ही, जंगल में प्रवेश नहीं किया जा सकता। फिर नीचे उतर पाना भी इतना सरल नहीं है। मैंने वहीं से देखा उस झील को जिसमें पानी नहीं था, पत्थर ही पत्थर थे, मगर निशान अब भी बने थे। मैंने बड़े-बड़े विशाल पेड़ को भी देखा जिसके पत्ते सूखे-से थे, घना भी अब उस तरह का नहीं था।

कहाँ कवि का अद्‌भुत प्रकृति वर्णन, दर्शनार्थ मन मचल जाये, कहाँ यह प्रत्यक्ष...! मुझे लगा जिस प्रकार आज प्रदेश में टुरिज्म को लुभाने हेतु ब्रांड एम्बेस्डर की परम्परा चल पड़ी है, उस वक्त के कवि आधुनिकता से परिचित नहीं थे। उन्हें अपने प्रदेश से इतना प्यार था कि अपनी कविता से लोगों को अपने प्रदेश बुला लेते थे। कविवर भवानी प्रसाद मिश्र ने 'सतपुरा के घने जंगल' लिखकर मध्यप्रदेश को आकर्षण का केन्द्र बनाया और कहा-आओ देखो हमारा प्रदेश कैसा है। यह देश-प्रेम सीखने की बात है। लेकिन सतपुरा का जंगल है, नदी है, कुछ जीव हैं जो दूर में दिखे भी, पर प्रकृति... कविता की चित्रात्मकता जैसी नहीं। मुझे लगा विकास की प्रक्रिया में प्रकृति को भी अपना कुछ बलिदान करना पड़ता है। जंगलों के बीच सड़कें शायद इनके कारण बने हों, पर धन्य थे कवि। मैं उनकी कल्पनाशीलता के यथार्थ को प्रणाम कर वहाँ से निकल पड़ा।

हमारी गाड़ी वहाँ से निकल सिमरौल पहुँची। सिमरौल से एक रास्ता कजलीगढ़ की ओर फूटा था। मामी जी की गाड़ी पीछे थी। इसलिए संजय जो एक तरह से गाइड बना था, उसने फोन से उन्हें सूचित कर दिया कजलीगढ़ आने के लिए। कजलीगढ़ पहुँचने में सिमरौल से पन्द्रह मिनट लगे। वहाँ पहुँचकर दृश्यों का अवलोकन कर ही रहा था कि मामी जी की गाड़ी आ गई। उनके आते ही हमलोगों ने गुफा तलाशना शुरु किया। हमें नीचे एक सौ तेरह सीढ़ियाँ उतरनी पड़ी। हमने देखा चारों ओर पेड़ ही पेड़ पत्थरों पर उगे थे। उन्हीं पत्थरों के भीतर एक खोह-सी गुफा थी जिसमें शिवलिंग और कुछ मूर्तियाँ थीं। उस शिवलिंग पर न जाने कहाँ से बूंद-बूंद पानी टपक रहा था। अदभूत दृश्य! इतना ही नहीं गुफा से सटे करीब 30 फीट ऊँचाई से गिरता झरना जो नीचे 15 फीट जाकर झील का रूप लिया था। झील में उतरने के लिए पत्थर काटकर सीढ़ियाँ बनायी गई थी। साथ आये सभी झील का आनन्द लेने चले गये। तभी मामी जी आ गईं और पूजा अर्चना कर बाबा को दक्षिणा दे वहाँ से निकल पड़े।

गाड़ी वहाँ से निकल उससे सटे ही कजलीगढ़ के किला की ओर बढ़ी। किला तो बहुत बड़ा था, किन्तु बहुत कुछ ध्वस्त हो गया था। जो था वह भी जर्जर। हाँ सामने विशाल मैदान और घाटियाँ थीं। हम सभी इधर-उधर घुमते हुए जब वापसी में किला के मुहाने प्रवेश द्वार पर पहुँचे तो दो-तीन सन्यासी छप्पड़नुमा घर के चबूतरे पर बैठे मिले। उन्होंने अपना नाम दयानन्द गिरी और ओम गिरी बताया। उन्होंने किले के बारे में जानकारी दी कि

कभी यहाँ माण्डवा नरेश हुआ करते थे। उनकी पुत्री का नाम कजरी था। वह घुड़सवारी की शौकीन थी।

रास्ते में उज्जैन द्वार, शिप्रा नदी तथा अन्य कई मंदिर आदि स्थलों के दर्शन, फोटोग्राफी आदि के साथ हम महाकालेश्वर मंदिर के द्वार पर पहुँचे। संजय ने गाड़ी पार्किंग की। तदनुपरान्त हमसब जलपात्र, दूध, फूल, बेलपत्र आदि लेकर आगे बढ़े।

उस वक्त करीब हजार आदमी की कतारें थीं। व्यवस्था ऐसी थी कि कोई भी पंक्ति से इधर-उधर नहीं हो सकता था। फिर इसे घुमावदार भी बनाया गया था। हमें उस वक्त सावन में जल चढ़ाने जानेवाले बम की याद आ गई जो बैद्यनाथ धाम (देवघर) जाते हैं। वह धाम भी बारह ज्योतिर्लिंग में से एक है। हम भी पंक्तिबद्ध हो गये। वार्ता के क्रम में भक्तों ने बताया कि महाकालेश्वर की आरंभिक पूजा मध्यरात्रि के उपरान्त चिता के भस्म से होती है। यह भस्म श्मशान से लाया जाता है। उन्होंने यह भी बताया कि इसके लिए दीक्षा प्राप्त कुछ निर्धारित पंडित होते हैं। इस पूजन का अधिकार केवल उन्हीं लोगों को होता है। पूजन के वक्त पंडितों के शरीर पर न तो अंगवसम होता है और न ही कोई रोशनी होती है। केवल मंत्रोच्चारण गूंजता है। भस्म पूजन के उपरान्त लोगों ने ठेलते हुए महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग तक पहुँचा दिया। पहुँच कर सुख व शांति का अनुभव हुआ। जलाभिषेक कर माथा टेका। उनके चरणों में कमल के फूलों को अधिक चढ़ते देखा। वह लाल फूल जिसे हमारे मिथिलांचल में लाल कोका कहा जाता है।

हमारी महाकालेश्वर की पूजा जब समाप्त हुई तो हमने समय पर गौर किया देखा 2.00 बज गये हैं। हम मानसिक रूप से संतुष्ट थे। कि कार्यक्रम ने हमलोगों को ओंकारेश्वर और उज्जैनी महाकालेश्वर के दर्शन का अवसर दे डाला था।

अब हमारी गाड़ी 15 मिनट उपरांत मौनी बाबा आश्रम पहुँची। वहाँ विशाल मंच बना था, किन्तु बैनर अधिवेशन का न होकर सम्प्रदाय विशेष का था। फिर हमने देखा स्थान-स्थान पर पीली धोती, जनेऊ, अंगोछा धारण किए बाल-ब्रह्मचारी खड़े हैं आने-वाले आगंतुक का स्वागत हाथ जोड रहे हैं। जब मैंने जानकारी प्राप्त की तो पता चला कि यहाँ बच्चों को वेद-वेदान्त की शिक्षा दी जाती है और यहाँ के छात्र गुरुकुल का जीवन-यापन करते हैं। ये लोग वेद-शास्त्री बनकर वैदिक संस्कार आदि कराते हैं।

हमने घड़ी देखा, उस वक्त 3.30 हो रहे थे। हमें स्मरण हो आया उज्जैन से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'शब्द-प्रवाह' की। उसके सम्पादक संदीप सृजन जी की। हमने फोन लगाया तो उन्होंने तुरन्त आने का आमंत्रण दे डाला।

हमसभी संदीप जी के निवास स्थल पर पहुँचे। वे एक कपड़ा व्यवसायी हैं, यह भेंट के उपरान्त जान पाया, लेकिन साहित्य के प्रति उनका समर्पण और पत्रिका निकालना निश्चय ही प्रेरणादायक था। अक्सर ऐसा होता है कि साहित्यकारों के सम्बन्ध एक-दूसरे के बीच रचना के साथ जुड़ते हैं। हम एक दूसरे को पढ़ते-पढ़ाते हैं। पत्र-पत्रिकाओं द्वारा मिलते-जुलते हैं फिर टेलीफोनिक संवाद से रिश्ते बने रहते हैं। प्रत्यक्ष आमने-सामने न होने की स्थिति में भी साहित्यकार-साहित्यकार के बीच एक घना रिश्ता होता है। फिर यदि किसी अधिवेशन या सम्मेलन में भेंट हो जाती है तो केवल नाम ही काफी होता है अपनापन के लिए।

अभी सत्र आरंभ होने में थोड़ा विलम्ब था। इसलिए जो जहाँ जिससे मिल रहे थे, परिचय के साथ-साथ अपनी-अपनी पुस्तकों का आदान-प्रदान करने में तल्लीन थे। धरमपुरी जी अपनी कुछ पुस्तकें लेकर मशगूल हो गये। मैं अपनी कोई भी पुस्तक लेकर नहीं गया था। न आधे-अधूरे स्वप्न, न बूढ़ी आँखों का दर्द और न अन्य कोई सामग्री। इस कारण केवल मेल-मिलाप करता रहा, चाहे - राजेन्द्र परदेश हो, प्रताप सिंह हो, डॉ० सतीशराज पुष्कर हो, डॉ. राजेश कौशिक हो। सबों से उनकी पुस्तकें मुझे जरुर नसीब हुईं। वहाँ कुछ नये चेहरे भी मिले। वाणी प्रकाशन दिल्ली की प्रकाशक हेमलता जी, साहित्य चन्द्रिका जयपुर के श्री कृष्ण शर्मा जी उज्जैन में विद्यापीठ के कर्त्ता-धर्त्ता प्रधान जी, कर्नाटक के डॉ. मिस शायरा बंगम जी आदि-आदि। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ने लगी तो समारोह का कार्यक्रम आरंभ हो गया। कुछ विशेष व्यक्ति के विलम्ब से आने की वजह से थोड़ा विलम्ब भी हुआ। पर जब आरंभ हुआ, तो उसकी मर्यादा देखने लायक थी। मंच पर वहाँ के विश्वविद्यालय के वी.सी., जिला पदाधिकारी एक-से एक गणमान्य व्यक्ति एवं साहित्यकार।

वक्तव्य समापण के उपरांन्त भोजावश की घोषणा हुई। भोजन के बाद जब सत्र का आरंभ हुआ तो सम्मान समारोह का सत्र था, इसमें 'भारत गौरव', 'भारतीय भाषा साहित्य रत्न', 'विद्यासागर विद्यावाचस्पति' आदि साहित्य व शैक्षिक सम्मान से सम्मानित किया जाने लगा। सम्मान में धरमपुरी जी को 'विद्यासागर' एवं मुझे 'भारतीय भाषा साहित्य रत्न' सम्मान से सम्मानित किया गया।

रात्रि करीब 8 बजे हमलोग इन्दौर पहुँचे। वहाँ मामा-मामी सबों ने सम्मान पत्र, मेडल आदि देखा, बधाई दी। उस रात्रि में हमलोगों के भोजन की व्यवस्था फैक्ट्री में की गई थी। जहाँ मामी ने स्वयं खाना बनाया था। सभी फैक्ट्री गये और भोजन के आनन्द के साथ-साथ फैक्ट्री भी देखा।

15.12.2012 को प्रातः उठते ही हमलोग नित्य क्रिया से निवृत्त हो अपना बैग पैक किया। इसलिए वापसी के लिए पटना की गाड़ी 2.30 बजे थी। फिर आख़िरी पल हम सभी मकान के दरबाजे पर थे। वहाँ गेट पर यादगार के रूप में अमन ने पूरे परिवार के साथ फोटो खींचा, सभी की आँखे नम थीं। हम लौट आये, पर कजरीधाम, सतपुरा के घने जंगल, शिप्रा नदी, और ओंकारेश्वर से महाकालेश्वर तक की सभी यादें, मामा-मामी का आतिथ्य सभी कुछ चित्र की भाँति मन में कैद है, शायद ही कभी भुला पाऊँ इस यात्रा को...।

## संभाव्य-संदेश

मुस्कान की कीमत अदाकर खुशियाँ खरीदने की पंक्ति में खड़े होकर विकास की परिभाषा लिखने को जो बेताब हैं उन्हें उदैव स्मरण रखना चाहिए कि उनका जो वर्तमान है उससे उत्कृष्ट कुछ होना ही विकास है। अपकृष्टता को विकास नहीं कहा जा सकता ।

# मानव और प्रकृति का नैसर्गिक समन्वय

चिंतन

शिवनंदन प्रसाद सिंह
भागलपुर

जब चित्त, चेतना एवं चिंतन को एक सुनिश्चित दिशा मिल जाती है तब लक्ष्य तक पहुँच पाना और पूर्णता की प्राप्ति संभव बन पड़ती है।

इस संघर्षपूर्ण जीवन में चारों ओर उठती हुई भयानक विपत्तियों की आंधियों में, खुदगर्ज इंसानों से भरी इस दुनिया की दलदल में तथा निरंतर उठने वाले झंझावातों के मध्य में हमें चाहिए ऐसा महामानव जो काट दे सभी विपत्तियों को अपने उदार दृष्टिकोण से, अपने स्नेह से, अपनी दयामयी वर्षा से और अपने कर्म की तलवार से।

दुर्गा सप्तशती में एक श्लोक है-''यावद् भूमंडलम् धत्ते सशैलवन काननम्। तावत् तिष्ठिति में मेदिन्याम् सन्ततिः पुअ पौत्रिकी''। अर्थात् जब तक पृथ्वी वृक्षों और पहाड़ों से युक्त जंगलों से समृद्ध रहेगी, तबतक यह मानव की संतानों का पालन पोषण करती रहेगी। इसी संदर्भ में महात्मा गाँधी का कहना था- "The earth has enough for everyones need, but not for everyone's greed."

वैश्वीकरण की धुंधली सीमाओं पर दृष्टिपात करने और 21वीं शताब्दी पर एक विहंगत दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान तथा संचार तकनीकी की अद्वितीय प्रगति मानव और प्रकृति प्रदत्त संसाधनों के नैसर्गिक संबंधों का समन्वय स्थापित नहीं कर सकी है। प्रकृति का शोषण एवं अनियोजित दोहन न केवल जारी है, बल्कि द्रुतगति से बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरुप भारत में हर वर्ष एक अस्ट्रेलिया जुड़ता चला जा रहा है। घटते वन क्षेत्र, कम होती कृषि भूमि, क्षीण हो रहे ऊर्जा के प्राकृतिक स्त्रोत एवं संसाधन अनदेखे नहीं किए जा सकते।

जब मानवीय संवेदना जायेगी तब मानव जाति संहार से बच सकती है। संवेदना और सृजन से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं, इसके लिए कोशिश करना, करते रहना हर मनुष्य का फर्ज़ है।

कविता

# बेघर परिन्दे

सच्चिदानंद इंसान
भागलपुर (0641 - 240 300)

1.

शाम शाखों पे परिन्दे
लौट जब आये
तो देखा
दरमियानी फासले
कमते गये।
सुबह की पहली किरण
शाखों को जब
देखा छुई थी
दरमियानी फासले
उड़ते परिन्दो के
फलक पे जाने क्यों
बढ़ते गये।

2.

शून्य की थी नीलिमा
या कि परिन्दों को ठगा था
व्योम का विस्तार
जिसको मापने का
हठ लिए
परबाजियां करते रहे थे
बिन थके वे और फिर
अज्ञानता की धुंध से पर्दा
क्रमिक उठते गये थे।

3.

शून्य के विस्तार से विचलित
भला क्यों हो परिन्दे
ढूँढना है अब उन्हें
नूतन बसेरा
रह गईं हैं, कम जगह
दरख्तों के शाखों पर जो अब
इस तरह जो फासले पैदा हुए थे,
दरमियां उनके कभी मुद्दों का न था
कम कर दिया, एकता मिल्लत
के सारे रास्ते खुलते गये।
आ गई थी समझ में उनके
सरल सी बात यह
बस्तियां हैं तो हमारे ख्वाब,
चाहत, हसरतों के सिलसिला भी हैं
हमारी मिहनतें जिनसे हमें
दाने मिले हैं, मिलते ही छाँव गहरी
और शाखों पे अब बेखौफ रहते हैं
इस तरह महफूज हैं हम
हर बला से, आफतों से।
समझ के फिर
परत-दर-परत
थे खुलते गये ।

❋❋❋

समीक्षा

# शमशेर बहादुर सिंह की कविता 'शिला का खून पीती थी' का अंतर्लक्ष्यी विवेचन

डॉ० बहादुर मिश्र
स्नातकोत्तर विभाग
तिलकामाँझी भा०वि०वि०भागलपुर
मो० : 9934694386

शमशेर बहादुर सिंह प्रगतिवादोत्तर हिन्दी कविता के सर्वाधिक सजग, समर्थ व समर्पित कवि हैं। चित्र, संगीत एवं मूर्ति के ताने-बाने से निर्मित इनकी अधिकांश कविताओं का प्रधान तत्व कल्पना है। विचार और भाव विरल हैं। अनुभूतियाँ भी सीमित हैं। फलस्वरूप, इनका लगभग सारा बल शिल्प पर केन्द्रित है। शब्द, विम्ब और प्रतीक की शैल्पिक तिकड़ी इनका काव्य-शिल्प रचती है। इनके काव्य-विम्ब मुक्तिबोध के विम्बों की तरह सुगठित और व्यवस्थित नहीं, बल्कि कुछ बिखरे से हैं। इनसे बावजूद कवि-आलोचक अशोक वायेपयी के शब्दों में - ''बिना मूर्त्ति गढ़े मूर्त्तिकार, बिना चित्र बनाए चित्रकार, बिना गाए संगीतकार कवि शमशेर हिन्दी कविता के स्वाभिमान और निर्भयता की अकंप आवाज'' बन गये हैं।

सात-आठ संग्रहों में संकलित शमशेर का समस्त काव्य कर्म लगभग छह दशकों का लंबा सफर तय करता है। रचना एवं प्रकाशन वर्ष की दृष्टि से उनकी कविताओं में अंतराल रहा है। मसलन, आलोच्य कविता का रचना-वर्ष 1942 ई० है तो प्रकाशन-वर्ष 1959 ई०। ज्ञातव्य है कि उनकी यह कविता 'कुछ कविताएँ' में संकलित है। बाद में अशोक वाजपेयी तथा नामवर सिंह ने अपने-अपने प्रतिनिधि संकलन में इसे सादर स्थान दिया।

कविता का रचना-वर्ष अर्थात 1942 कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। राजनैतिक दृष्टि से यह भारत की आजादी की लड़ाई का निर्णायक वर्ष था। अंग्रेजो, भारत छोड़ो के नारे से पूरा भारत निनादित था। दूसरी तरफ कवि शमशेर उकील बंधुओं से चित्रकला का विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरांत मार्क्सवादी स्कूल में दीक्षित हो रहे थे। उन दिनों वे बनारस के गर्ल्स कॉलेज में अध्यापन भी कर रहे थे। इन्हीं पृष्ठभूमियों में यह कविता रची गयी थी।

व्याख्येय कविता में तीन पदच्छेद हैं। पहले में तीन, दूसरे में दो और तीसरे में चार, यानी कुल नौ छोटी-बड़ी पंक्तियाँ। परसर्ग-सहित गान बत्तीस शब्दों से बनी इस कविता का उन्मीलक शब्द कल्पतरू है। जब तरू होगा, तब जड़ और टहनियाँ भी होंगी, सो हैं। तरू अंगी है तथा जड़ और टहनियाँ अंग। पेड़ की लगभग पूरी जैव संरचना और तरू भी कैसा, जो माँगो सो देने वाला। एक दिव्य, बल्कि मिथकीय वानस्पत आकार-निर्गुण का सगुण अवतार जैसा। कवि ने वैयधिकरष्य रूपक के सहारे अमूर्त्त प्रस्तुत 'आत्मा' के लिए मूर्त्त अप्रस्तुत कल्पतरू का प्रयोग कर विम्बोद्भावक अप्रस्तुत विधान का निदर्शन प्रस्तुत किया है। प्रश्न है कि कविता में प्रयुक्त आत्मा परंपरागत भारतीय दर्शनवाली आत्मा है या कुछ और। यदि वह औपनिषद्रिक है तो कवि की मार्क्सवादी आस्था का क्या होगा। मुझे लगता है कि उन्होंने इसे चेतना की अजस्त्र धारा के रूप में प्रयुक्त किया है। इसकी पुष्टि 1941 में रचित उनकी 'लेकर सीधा नारा' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों से हो सकती है -

मैं समाज तो नहीं
न मैं कुल कण-समूह में
हूँ मैं केवल
एक कण।

आत्मा शायद चेतना-कण के लिए प्रयुक्त हो। शमशेर के शब्द-कर्म पर विचार करते समय थोड़ी रियायत तो लेनी ही पड़ती है।

हाँ तो उनकी आत्मा का कल्पतरू एक पक्के चबूतरे पर स्थित था जो ढलान में चिकना व चौरस था और वह चबूतरा एक शिला पर विराज रहा था-काट-छाँटकर कल्पतरू के इर्द-गिर्द चबूतरे की शक्ल में ढाला गया था। वहीं खड़ा था कल्पतरू जिसकी जड़ शिला के अंदर धँसी थी। शिला का खून अर्थात स्वत्व-पान कर तरू को जीवन-रस प्रदान कर रही थी। इस प्रक्रिया में वह पत्थर हो गयी थी, नाम की जड़ सचमुच की जड़ हो गयी थी। उनकी एक अन्य कविता 'सींग और नाखून' (1942) में भी जड़ों का जाल पत्थर बन जाता है।

गौर करने की बात है कि शिला बेजान होती है। उसमें खून कहाँ! फिर खून पीने का काम जड़ कर रही है। सामान्यतः कोई भी जड़ पानी पीती है, न कि खून। क्या निहितार्थ है। यही न कि अपने अंगी, यानी वजूद की रक्षा के जद्दोजहद में वह पत्थर को फोड़कर जीवन-रस चूसते-चूसते खुद पत्थर हो गयी थी। हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'कुटज' भी शिला की छाती फाड़कर जिन्दा रहने की गरज से अपने लिए अपने कुल परिवार के लिए जीवन-रस चूसता है, पर वह पत्थर नहीं होता। लेकिन, यह सच है कि पत्थर से कुछ प्राप्त करने के लिए, जिसने उसका स्वत्व अपने अंदर कहीं छिपा रखा है, पत्थर बने काम नही बनता। उसकी मजबूरी है और यही उसकी जिजीविषा का चरम भी। ऐसी ही स्थिति में 'खून पीना' मुहावरा चलन में आता है और सार्थकता ग्रहण करता है। 'खून पीना' में लोकोक्ति अलंकार है तो 'शिला का खून' तथा 'पीनेवाली जड़' में मानवीकरण अलंकार शैली वैज्ञानिक दृष्टि से इसमें विचलन है यानी स्थापित रजिस्टर का उल्लंघन। ऊपर-ऊपर विरोध पर भीतर पैठने पर खत्म। इसलिए विरोधाभास अलंकार का भी नमूना कहा जा सकता है।

कविता का दूसरा पदच्छेद विम्बोद्भावक है। कवि ने साम्यमूलक अलंकार उपमा के सहारे चाक्षुष एवं गत्वर विंब की सृष्टि की है। बादल उस छतनार तरू का ऊपरी भाग, अर्थात पत्तों का छाता है। दूसरे शब्दों में, तरू ने बादल के रूप में छाता ओढ़ रखा है। सीढ़ियाँ क्या है-ये हैं नीचे हवा के सहारे झूलती टहनियाँ। टहनियों से सीढ़ियों की तुलना कर कवि ने मूर्त्त प्रस्तुत के लिए मूर्त्त अप्रस्तुत का विधान करते हुए मूर्त्तविधानाश्रित अप्रस्तुत विधान का उदाहरण प्रस्तुत किया है। अंतिम अंश में चिकने चबूतरे में शायद आत्मा के कल्पतरू की सुन्दर सतह दिखाकर कवि ने स्थूलाधार शरीर की ओर संकेत किया है। डॉ० रामविलास शर्मा ने शमशेर की इसीतरह की कविताओं को सहस्यवादी कहा। 'एभ्री पोएट हैज एट लीस्ट अ टच ऑफ मिस्टिसिज्म' - सच ही कहा गया है।

शमशेर की यह कविता जड़ और चेतन की एकान्विति है। कवि अपनी मितव्ययिता के लिए चर्चित-कुचर्चित रहे हैं। जटिलता के पीछे जो कारण (कई ललितकलाओं का मिश्रण, बिखरे किव, एकतानता का अभाव आदि) बताए जाते हैं, उनमें यह भी एक है। बहुस्तरीय भाषिकता के कारण इनकी कविताएँ प्रायः दुरुह हो जाती हैं। कवि ने निजी अन्तःसघर्ष के कारण भी व्याख्येय कविता की संवेदना उलझी-सी प्रतीत होती है।

जो हो, कविता शमशेर की लघु, पर गरिमामयी सारस्वत प्रस्तुति है।

❋❋❋

आलेख

# सामाजिक वैविध्य-संतुलन

दयानन्द पंडित
भागलपुर
मो० : 9430023240

भौतिक संसार रूपी सागर के बीच जीवन-नौका हवा के झोकों के बीज अटखेलियाँ कर रही थी मानों हृदय में एक हलचल-सी मची हो। विचारों को विराम दे उस नैसर्गिक सत्ता की शक्ति का आरोहन होना आरम्भ हुआ जो अविराम गति से हमारे मष्तिष्क पर छाने लगा। हृदय की गति बढ़ चली। खुले नयनों के सामने देखा कि विहंगम दृश्य परदा-दर-परदा उतरने-चढ़ने लगा। खामोश रहा, विचार को स्थिर किया, किन्तु चिन्तन कार्य रूक नहीं रहा था। अनूप जी की बातों ने एक प्रारूप दिया और मैं कागज कलम लेकर लिपिबद्ध करने लगा। भारतीय सभ्यता संस्कृति का उदभव और विकास का क्रम विकास-सिद्धांत डारविन के खोज के सहारे नहीं चला, बल्कि सृष्टि विकास एवं विनाश के साथ चला, यह अन्वेषण का पहलू है। ऋग्वेद आदि ग्रंथों के सहारे यह तथ्य साबित हो जाता है कि सम्पूर्ण एशिया महादेश सहित सभी देश एक साथ समायोजित था जो भौगोलिक कारण से क्रम-विच्छेद हुआ।

भारतीय परम्परा और पुराण कथा के अनुसार भन्वन्तर की उत्पत्ति ब्रह्मा की सृष्टि रचना से आरंभ माना जाता है। इसकी संपुष्टि वैज्ञानिक आधार पर हो रही है। यह जीवाश्मों की खोज और जाँच-पड़ताल से साबित होने लगा। करोड़ों अरबों वर्ष पहले सभ्य मनुष्य धरती पर थे। चूँकि 84 लाख योनियों की सृष्टि उत्पत्ति का सिद्धांत गणितीय भौतिकी तथा रसायनों के निर्माण के आधार पर की जा रही है, तत्व विवेचनाकारों की विभिन्नता से भी चिन्तनीय रूप-रेखा तैयार हुआ। मात्र 4 लाख योनिज मनुष्य पृथ्वी पर वास कर रहे हैं। ऋषि कश्यप प्रजापति हुए जिनके द्वारा सभी जीवों की उत्पत्ति हुई। सप्त ऋषिमंडल प्रजापति हुए। सभी अपने-अपने क्षेत्र के रचनाकार हुए। पुराणों के आख्यानों द्वारा सृष्टि के विकास और विनाश को समझाया गया है।

वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति, आगम-निगम तंत्र, सूत्र एवं उपनिषद् की रचना हुई। यह मानव के क्रमिक विकास सिद्धांत का निरूपण ही है।

रहस्य द्वैत-अद्वैत का सिद्धांत अपने-अपने समय का सिरमौर बना। देवों, दानवों, दैत्यों, असुरों, राक्षसों, ऋक्षों, किन्नरों, नागों तथा नरों की गाथा को संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध किया गया। उस समय सभी देश सीमाविहिन थे। देव-दानव, सुर-असुर और नृवेश के बीच सामाजिक संतुलन वैविध्यपूर्ण रहा। इसकी गाथा भी पुराणों में वर्णित है। शक-हुण-मंगोल-चीन-तातारी खस-शबर-तुर्कादि अपने कविलाई जिन्दगी में अपने कर्म से शासक और शासित रहा। द्वापर युग तक वर्त्तमान समय के अनुसार जाति-वर्ण-भेद नहीं था। सामाजिक व्यवस्था अनुशासनरहित नहीं थी। समरसता थी, किन्तु वर्चस्व की लड़ाई का दुष्परिणाम महाभारत युद्ध में फलीभूत हुआ। धीरे-धीरे महाभारत काल के बाद भारतीय जीवन-दर्शन में ह्रास होना शुरू हुआ। भारतीय सीमा के अन्दर शत्रुओं का आगमन सम्राट अशोक के 'बुद्धम शरणम् गच्छामि' से शुरू हो जाता है। बुद्ध का सिद्धान्त अहिंसा बरतने से था। राजकुलाचार के कारण ही भारतीय जनजीवन हिंसा मुक्त हो गया। स्वामी अरविन्द के मानव क्रम विकास का सिद्धांत एवं पुर्नजन्म तथा युद्ध एवं उसकी विभिषिका से संदर्भित उल्लेख हमेशा बोधगम्य तथा श्लाघनीय है।

भारतीय जीवन-दर्शन पुरातन काल से आजतक आध्यात्मिक संभाव्य को बनाये हुए है। सनातन ऋषि-मुनि जीवन-दर्शन के अन्वेषण में कालातीत हुए। उन्होंने भारतीय समाज को गुह्य ज्ञान दिया। अपने बाल्यावस्था में संत ज्ञानेश्वर तथा आदि शंकराचार्य भी प्रादुर्भूत हुए। नास्तिकतावाद और वितण्डतावाद को धराशायी किया तथा भारतीय जनजीवन को नवजीवन प्रदान किया। स्वामी विवेकानन्द ने संसार को मानव प्रेम का संदेश दिया। 'जागो और उठो' को पुनः पुनर्जिवित किया। आधुनिक काल के कालजयी यथा कबीर तुलसी-सूर-मीरा आदि ने भक्ति रस का प्रभाव बिखेरा तथा कबीर ने अव्यक्त रहस्य को प्रकट किया। उत्तर-दक्षिण के संतों ने दार्शनिक भाव-विचार दिया। निर्गुण और सगुण उपासकों के बीच तादात्म्य सम्बन्ध उपस्थिापित किया। आत्मा, परमात्मा तथा जीव से संबंधित ज्ञान को दार्शनिक परिभाषा से परिभाषित किया गया, वह अकल्पनीय है। अपने भाष्य द्वारा तमान्ध, मोहान्ध तथा मदान्धों के भ्रम को दूर कर एक सार्वभौम सत्ता एकेश्वरवाद प्रतिष्ठित किया। अदृश्य सत्ता द्वारा संचालित संसार को तार्किक रूप से समझाया। राजपोषकीय चारणों-भाटों के द्वारा प्रशंसित मिथकों के जरिये भ्रमित आमजन को उपदेशों, रीति-नीति, स्मृति तथा आडम्बरपूर्ण भक्ति को छोड़ने तथा सत्य की खोज करने पर बल दिया गया। श्री दयानन्द सरस्वती ने भी भ्रमित जनों को सत्य का बोध कराया।

सनातन समाज में आज भी मूर्ति पूजा का प्रचलन अधिक है। सत्य से दूर हो रहे मानव को पुनः वापस लाना होगा। चार वर्णों की व्यवस्था समाज में संतुलन बनाने के लिए हुआ। वर्ण व्यवस्था एक खोज है। यह व्यवस्था जिस काल और परिस्थिति में बनी होगी उस समय 'मानव-मानव सब एक है' का उद्घोष निश्चित रूप से रहा होगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र धर्म एक व्यवस्था थी। वह दैनिक कर्तव्यों से जुड़ा था। एक व्यक्ति सभी कार्य एक साथ सम्पादित नहीं कर सकते थे और आज भी ऐसा संभव नहीं होगा। यह अपने-अपने क्रमानुसार प्रगति पथ का सोपान मात्र है। प्राचीन साहित्य पर अगर गौर किया जाय तो बहुत उदाहरण मिलेंगे अपने वर्ण को त्याग कर अन्य वर्णो में समाहित हो जाने का। यह आरोही भी था और अवरोही भी।

उपनिषद् और वेदान्त दर्शन में ईश्वर से संबंधित दर्शन का निरूपण किया है। 4 लाख योनिज मानव की संरचना का महत्व बतलाया गया है कि परमात्मा सभी जीव-निर्जीव-स्थावर-जंगम अर्थात कण-कण में वास करते हैं, किन्तु मानव तन में परमात्मा की खोज करना श्रेयस्कर माना गया है। आजतक भारत ही नहीं, अपितु संसार के अन्य देशों में भी ईश्वरमूलक तथ्य प्रकट किया गया है।

''एकोऽहम बहुश्याम'' की कथा का दिग्दर्शन यह सम्पूर्ण संसार है। 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' यह सार्वभौम सत्ता का प्रतीक वाक्य है। इस रहस्यमय शुक्र का अवलोकन संतों ने की है। स्वामी सर्वेश्वरानन्द रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी अरविन्द घोष आदि पहुँचे हुए संतों ने जाना। वही मार्गदर्शक सत्ता अभी भी अदृश्य रूप से आध्यात्मिक उर्जा का सम्प्रेषण कर रहे हैं। राहुल सांकृत्यायन की भविष्यवाणी कि 22वीं सदी सम्पूर्ण पृथ्वी पर मानवीय गुणों (ईश्वरीय उर्जा) से परिपूर्ण होगा। गोपीनाथ कविराज ने भी आगम-निगम द्वारा शक्ति तथा शाक्त धर्म तंत्र साहित्य का विवेचन किया है। विदेशी दार्शनिकों की अपेक्षा भारतीय दर्शन उच्च कोटि का है और सदैव रहेगा। जाग्रत परिवार समाज और राष्ट्र सदैव प्रगति और विकास की चरमसीमा लांध ही जाती है। मानव जन्म का उद्देश्य एक मात्र असीम सत्ता के साथ विलय कर जाना ही है। भौतिक जीवन-दर्शन अलाभकारी है। आध्यात्मिक जीवन सर्व सुलभता की निशानी है। अगम्य संसार शून्य-बोध का प्रतीक होता है। चूँकि सभी नाशवान हैं, मनुष्य में व्याप्त अज्ञानता भौतिक संसार को सत्यमान कर प्रेम करने लग जाता है। यह प्रेम तब तक उत्साहवर्द्धक रहता है जब

तक आपके शरीर में उर्जा है। सन्त उच्च पथिक महात्मा का यदि सानिध्य प्राप्त हो जाता है तो अज्ञान रूपी पर्दा हट जाता है। सत्यानुभूति वह रहस्य भी दर्शित होकर तदाकार हो जाने का मर्म ज्ञापित हो जाता है। वह स्थान निराकार जलमग्न एकमात्र नारायणवासी हो जाता है जैसे माता के गर्भ में शिशु, हम-आप माँ के गर्भ से बाहर आते हैं, वाह्य दुनिया में प्रवेश पाते हैं। पृथ्वी हम-आप को प्राप्त होती है। दुर्गम-दुःख और सुख की पीड़ा स्मरणातीत हो जाती है, किन्तु कुक्षि के गह्वर में हम आप सीधे ईश्वर अराधक होते हैं जैसे दृष्टान्त अष्टावक्र और अभिमन्यु को प्राप्त था। जनक और जननी के कर्म-विपाक ही शिशु के संस्कार का सांगठनिक स्वरूप होता है। जबकि परकाया प्रवेशित जीव का अपना कर्म-विपाक होता है। पुनः यहाँ पर यह बताना कि ईश्वर के प्रति अपनायी गई धारणा आस्था और विश्वास की चेतना का आलोड़न अवचेतन मन पर होती है तब आप उस असीम सत्ता के निकट स्वयं को पाते हैं। आत्म साक्षात्कार को परिभाषित कर सकने के योग्य हो जाते हैं। कौतुहलता समाप्त हो जाती है। पतंजलि ने योग की क्रियात्मकता को सृजित कर आमजनों के निहितार्थ प्रकाश में लाकर कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया जिसकी चर्चा श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को बताया और दिव्य ज्ञान दिया तथा योगेश्वर कहलाए। योग के आदि प्रणेता भगवान सदाशिव ही हैं जिन्हें योगीश्वर भी कहा जाता है। वस्तुतः यह शास्त्र-सम्मत भी है। वे देश-काल-परिस्थिति से परे हैं। वस्तुतः वही संभाव्य जीवन दर्शन है।

❋❋❋

लघुकथा

# जिज्ञासा

डॉ० महेन्द्र मयंक
मो० : 9307172700

आनन्द बाबू और विष्णु जी दोनों साहित्यिक सफर में निकल पड़े थे और जालन्धर पहुँचे। फिर पंकस अकादमिक द्वारा सम्मानित होकर स्वर्ण मंदिर दर्शन करने अमृतसर गये।

आनंद बाबू बोले क्यों न लंगर में प्रसाद पाया जाय, फिर स्वर्ण मंदिर के लंगर में पहुँच गये।

वाहे गुरु के उद्घोष के पश्चात दोनों पंक्ति में बैठ गये। देश की अखण्डता और एकता देखनी हो तो अमृतसर पहुँच जायें जहाँ करोड़पति से लेकर भिखमंगे भी एक साथ स्टील की थाली में खाते नजर आयेंगे। विष्णु बोले कि यह देश के सामने एक मिसाल है जहाँ इंसानियत ही इंसानियत है।

सामने बैठा एक भिखारी थाली से खीर उठा-उठा कर छुपाते हुए पोलिथीन की थैली में भर रहा था। वह भिखारी माँग-माँग कर खीर लेता और भयभीत नज़रों से छुपा-छुपाकर खीर को रखता जा रहा था, लेकिन आनंद बाबू की नजरों से बच न सका। आनंद बाबू उस भिखारी की गतिविधि पर नज़र गड़ाये हुए थे।

आनंद बाबू के मन में यह प्रश्न बार-बार दोहरा रहा था कि 'जितना चाहो, उतना खाओ' तो फिर भिखारी क्यों खीर चुरा रहा है। आनंद बाबू की जिज्ञासा बलवती होती गई।

भोजन खत्म करने के बाद आनंद बाबू उस भिखारी के पीछे-पीछे हो लिये। भिखारी आगे-आगे और आनंद बाबू पीछे-पीछे चलते रहे। भिखारी एक बटवृक्ष के नीचे झोपड़ी में पहुँचा जहाँ उसकी अपाहिज पत्नी और बेटे कटोरा लिए इन्तज़ार कर रहे थे। भिखारी को देखते ही परिवार के लोग आनन्द-विभोर हो उठे।

आनन्द बाबू को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया था और जिज्ञासा शांत हो चुकी थी।

कविता

# उसे भी जीने दो

संयुक्ता गुप्ता
भागलपुर
मो० : 9570569342

उसे भी जीने दो,
जीवन - पथ पर
इस सृष्टि की
इसी धरा पर
वह भी जीने आया है।
स्वर्ग - लोक से
चक्र - रथ पर
फिर, क्यों
दिग्भ्रमित कर
विवश उसे करते हो
जीवन का सच जानो
नश्वर देह
मृत्यु अवश्यंभावी
समझ इस रहस्य को
उसे भी जीने दो,
क्योंकि
मानवता से श्रेष्ठ नहीं कुछ
मानवता को भी जीने दो।

कविता

# वृद्धावस्था

शेराज खान
देवरिया, उत्तर प्रदेश
मो० : 9161536032

खो गया मेरे मन का बसंत
खो गयी मेरी हरियाली।
आया है एक ऐसा पतझड़
सूख गयी मेरे मन की बारी।

एक सरिता थी
जो सूख गयी।
एक उपवन है
मुग्धहीन।

किन्तु कभी मेरे मन के उपवन में
फूलों की बहुत सी क्यारी थी।
मेरे मन के सरिता का जल
सबको बहुत ही प्यारी थी।

किन्तु क्या अब व्यर्थ है जीवन
व्यर्थ हो गया मेरा उपवन।
क्या व्यर्थ थी मेरी आशा
व्यर्थ थी मेरी परिभाषा।

कोई आकर बता दे मुझको
क्या यही है वृद्ध का जीवन
कोई समझा दे ये मुझको
क्या ये अवस्था नहीं है जीवन का अंश।

❋❋❋

# लोकवाणी

## संभाव्य एक स्तरीय पत्रिका है

**अनिल जैन**
संपादक, परिधि
सागर, मध्य प्रदेश

नयनाभिराम मुखपृष्ठ, स्तरीय रचनाएं और कुशल सम्पादन से समायोजित पत्रिका 'संभाव्य' हिन्दी त्रैमासिक के अप्रैल 2013 एवं जुलाई 2013 के अंक प्राप्त हुए। बहुत-बहुत धन्यवाद। गीत, गजल, कहानियां, लेख, लघुकथाएं सभी कुछ अच्छे लगे। पत्रिका का गठन श्रेष्ठ सम्पादकमंडल का परिचायक है। डॉ. शीतल अवस्थी, डॉ. अश्विनी, डॉ. जी. पी. सिंह सभी श्रेष्ठ विद्वान हैं। एक अच्छी पत्रिका के लिए आप सभी को बधाई ।

## संभाव्य सरल भाषा में उच्च अवबोध स्वर का प्रमाण

**डा० प्रेमशंकर श्रीवास्तव**
प्राचार्य, यू.बी.सी.ई भागलपुर

'संभाव्य' के विभिन्न कलेवर पढ़कर आनन्दमिश्रित आश्चर्य हुआ। आज के युग में अच्छी पत्रिका का मतलब साहित्य सन्दर्भों से बोझिल एवं शब्द-काठिन्य से पूर्ण होना है, ऐसे में सरल एवं सरस प्रस्तुति के रूप में संभाव्य एक मिसाल है। समस्त कहानियाँ, आलेख एवं कविताए प्रेरणास्पद एवं सर्वग्राह्य हैं। परन्तु यदि मैं डा०जी०पी० सिंह का आलेख 'गुरुकुल बनाम वर्तमान शिक्षा-पद्धति', प्रीति कुमारी का आलेख 'शिक्षा में प्रेरणा का महत्व' की चर्चा न करूँ तो मुझे भी असन्तोष होगा। सरल भाषा में मूल्यांकन सतथ्य प्रस्तुत करना ही उच्च अवबोध स्तर का प्रमाण है। पत्रिका के सतत् प्रगति के लिए शुभकामनाएँ।

## शुभकामनाएँ

**भैरवलाल दास**
प्रोजेक्ट ऑफिसर
लेजिस्लेटिभ काउन्सिल, पटना, बिहार

संभाव्य प्रबंधन को बहुत-बहुत धन्यवाद !
अभी मैं अमेरिका के बोस्टन शहर में हूँ। पत्रिका मैंने देख ली है। सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ !

## संभाव्य में स्थान पाना सौभाग्य की बात

**अशोक मिजाज़**
सागर, मध्य प्रदेश

संभाव्य मैंने पढ़ ली है। पहले से ज्यादा स्तरीय और विशिष्ट लगी। संभाव्य में स्थान पाना सचमुच सौभाग्य की बात है। संभाव्य की तारीफ़ करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैंने फुर्सत से एक-एक रचनाएँ पढ़ी। बड़ी-से-बड़ी पत्रिका भी जो नहीं कर पायी, उसे संभाव्य ने कर दिखाया है। संभाव्य परिवार के सभी सदस्यों का शुक्रिया!

# लोकवाणी

## अल्पकाल में संभाव्य ने एक विशिष्ट पहचान स्थापित की है

**अभिनव अरूण**
वरिष्ठ उद्घोषक
आकाशवाणी, वाराणसी

प्रभाव एवं महत्ता के सन्दर्भ में शब्द ब्रह्मस्वरूप है। साहित्यकार अपने सृजन के द्वारा शब्दों की सार्थकता सिद्ध करता है। अपनी दैनंदिन व्यस्तता में हम जीवन के जिन कई पहलुओं को नजरअंदाज कर देते हैं वही कहानी कविता आलेख के माध्यम से जब हमारे सामने होते हैं तो हमें मात्र चमत्कृत नहीं करते, अपितु भावी जीवन की सही राह भी दिखाते हैं। ऐसे विमर्शप्रधान एवं सन्देशपरक साहित्य का संकलन-संपादन और उसकी प्रस्तुति एक बड़े उत्तरदायित्व का कार्य है। 'संभाव्य' का एक नियमित पाठक होने ने नाते इसके अक्टूबर 2013 अंक को पढ़कर यह सहज ही अनुभूति हुई कि 'संभाव्य' की कुशल-प्रबुद्ध संपादन-प्रबंधन टीम अपने लक्ष्य में पूर्णतः सफल रही है। राष्ट्रीय फलक से नए-नए रचनाकार इस प्रतिष्ठित पत्रिका से जुड़े हैं और अपनी श्रेष्ठता से इसे लाभान्वित किया है। लोकवाणी में बढ़ते प्रतिक्रियात्मक पत्र इस बात की गवाही दे रहे हैं कि 'संभाव्य' ने अपनी जमीन बना ली है और वह समाज को सही दिशा देने के उज्जवल पथ पर अग्रसर है।

अंक में शामिल कवितायें, कहानियों एवं आलेख वास्तव में समकालीन सृजन के दर्पण सदृश हैं। 'संस्थापक की कलम से' में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ विश्वबंधुत्व की स्थापना को समय की पुकार बताया गया है। विषयों से समृद्ध होते जा रहे हम रिश्तों से भी समृद्ध हो यह नितांत आवश्यक है। पुरोवाक, वर्तमान का सौन्दर्यबोध और 'गुरूकुल बनाम वर्तमान शिक्षा पद्धति' विषयक विचारपरक आलेख हमें सोचने को बाध्य करते हैं। आज इस शिक्षा प्रणाली ने हमें मूल्यों और नैतिकता से कटी हुई नस्लें उपहार में दी है जो अपनी जड़ों से कटी हुई अस्तित्वविहीन हैं।

अंक में शामिल अशोक मिजाज़, शशांक शुक्ल, दीप्ती शर्मा और अभिलेख द्विवेदी की कवितायें प्रशंसनीय हैं। डॉ हीरालाल प्रजापति की कहानी 'चिर प्रतीक्षा' सकारात्मक सन्देश दे गयी। डॉ सुजाता चौधरी की कहानी 'रानी' बचपन में पढ़ी 'ताई' कहानी की याद दिला गयी। डॉ सुजाता ने एक बालक के मनोविज्ञान को बखूबी पकड़ा और उसे अभिव्यक्त करने में सफलता पायी है। इस कथा के सामाजिक सन्देश भी हमें सोचने पर विवश करते हैं बहुत साधुवाद और शुभकामनायें डॉ सुजाता को।

विशेष उल्लेख शतदल मंजरी का करना चाहूँगा जिनकी कथा 'समिधा' एक प्रकार से इस अंक का प्रमुख आकर्षण है। एक सधी हुई तथा कथ्य-शिल्प के निकष पर खरी इस रचना के लिए उनको बहुत बधाई और शुभकामनायें। आपने उनकी कविता यादों की महक को निरंतरता में समाहित कर उपयुक्त निर्णय लिया। यह कविता समिधा की पूरक रचनास्वरूप है। उसी भाव को पाठक के हृदय में गहराई तक ले जाने में सक्षम। शतदल मंजरी से साहित्य को बहुत अपेक्षाएं हैं। समीक्षात्मक आलेख 'डंडीर' और 'अरे जाने दो' में दयानंद जायसवाल का विमर्श और उनका विजन प्रभावित करनेवाला है।

सम्पूर्णता, सामग्री-चयन और प्रस्तुति के लिहाज से 'संभाव्य' दिनानुदिन आगे और आगे बढ़ रहा है। यह हर्ष और संतोष का विषय है कि अल्पकाल में ही इस पत्रिका ने अपनी एक विशिष्ट पहचान स्थापित की है। इस हेतु हार्दिक बधाई संपादन और प्रबंधन टीम को। वर्ष 2014 'संभाव्य' परिवार के लिए साहित्यिक उन्नति और समृद्धि के अनगिनत क्षण लाये, इसी शुभकामना के साथ नव वर्ष की हार्दिक बधाई और शुभेच्छाएं।

# लोकवाणी

## संभाव्य का प्रयास मनुष्यता की दशा-दिशा बदलेगी

**डॉ० रामचन्द्र घोष**
**हिन्दी विभागाध्यक्ष**
**तिलकामाँझी भागलपुर वि०वि० भागलपुर, बिहार**

सुदामा पांडेय द्वारा इंगित 'तीसरा आदमी' की अन्वेषण-यात्रा जारी रहे। यह तीसरा आदमी धर्म, संस्कृति, साहित्य, कला आदि प्रायः सभी क्षेत्रों में मौजूद हैं। संभाव्य द्वारा इस तीसरे आदमी की पहचान का प्रयास मनुष्यता की दशा-दिशा बदलेगी। इस महायज्ञ को आहूत करने के लिए संभाव्य परिवार को धन्यवाद।

## युवा रचनाकारों को संभाव्य में स्थान मिलना गौरव की बात

**प्रो० दीपक शर्मा**
**एसोसिएट प्रोफेसर**
**दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

मैं सर्वप्रथम संभाव्य-प्रबंधन को इसप्रकार के अद्वितीय कर्त्तव्य के लिए हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि 'संभाव्य' हिंदी त्रैमासिक युवा रचनाकारों को उनके विचारों एवं साहित्यिक प्रतिभा को निखरने के लिए संभावनाएं एवं अवसर प्रदान करता है। यह साहित्य और समाज दोनों ही क्षेत्रों के लिए बड़ी बात है।

मैं अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं में लेखन-कार्य से जुड़ा हूँ, लेकिन किसी भी पत्रिका में नवोदित रचनाकारों की श्रेष्ठ रचनाओं को भी महत्व नहीं दिया जाता है।

युवा रचनाकारों की श्रेष्ठ रचनाओं को स्थान दिए जाने हेतु मैं 'संभाव्य के उत्तरोत्तर विकास की शुभकामनाएँ देता हूँ।

## संभाव्य की संपादकीय संरचना उत्तम है

**एम० के मितेश**
**एरिजोना, अमेरिका**
**मो० : 602-288-8880**

आपकी पत्रिका 'संभाव्य' के हरेक अंक को मैंने देखा और पढ़ा भी। यह अद्भुत प्रभावकारी, सृजनात्मक विचारों से अभिभूत, ज्ञानवर्द्धक तथा सामाजिक चेतना को जाग्रत करनेवाली है। संपादकीय संरचना उत्तम एवं सुसज्जित है। बहुत कम समय में इस पत्रिका ने जो लोकप्रियता हासिल की, वह प्रशंसनीय है। मेरी शुभकामना है कि इसकी ख्याति दिनानुदिन लोगों के बीच बढ़ती जाय।

## संभाव्य में विराट सत्यों का सम्यक विवेचन है

**ई०एम०एम०कुणाल**
**सिंगापुर**
**मो० : 006592375761**

'संभाव्य' पत्रिका के अक्टूबर अंक मुझे मित्रों से प्राप्त हुआ। इसकी संरचना बड़ी सशक्त लगी। इस पत्रिका में मैंने सृजन एवं सौन्दर्य तत्व के साथ-साथ मानव जीवन के विराट सत्यों का सम्यक विवेचन पाया।

इस प्रकार के पत्रिका-प्रकाशन हेतु संभाव्य परिवार के सभी सदस्यों को धन्यवाद एवं मेरी शुभकामना।

## 'संभाव्य' सुन्दर जीवन-प्रक्रिया की एक तलाश है

**आनंद कमल**
**राजगीर**
**मो० : 9473029208**

'संभाव्य' पत्रिका मिली जिसे अपने मित्रों के बीच पढ़ी। इस प्रकार के पत्रिका-प्रकाशन हेतु संभाव्य परिवार को हार्दिक धन्यवाद। इस पत्रिका में एक खास बात लगी कि इसमें जीवन-प्रक्रिया की तलाश है। जिसमें परिवर्तन की स्वाभाविक इच्छा वर्तमान हो, समाज के नव निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका हो और यह भूमिका प्रभावकारी तथा सकारात्मक हो, वह भाषा, शिल्प एवं संवेदना के स्तर भी कलात्मक होती ही है।

जनवरी, 2014
ISSN - 2321-3922
संभाव्य
हिंदी त्रैमासिक
www.sambhavya.com
सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका